प्रकाशक—
श्री परमेश्वर सिंह,
किताब-घर,
कदमकुआँ, पटना

प्रथम संस्करण
मार्च १९४०
क़ीमत आठ आने

मुद्रक—
उमादत्त शर्म्मा
रत्नाकर प्रेस,
११-ए, सैयदसाली लेन,
कलकत्ता

राष्ट्रके कर्णधार

विषय-सूची

सम्पादकीय

बालकों, किशोरों और युवकोंके जीवनको समुन्नत और आदर्श बनानेमें महापुरुषोंका बहुत ज्यादा हाथ होता है। जीवनियोंके अध्ययनसे हम सीखते हैं कि किस प्रकार अमुक पुरुष जीवनकी कठिनाइयोंका व्यूह-भेद करता हुआ आगे बढ़ा, उसकी जय-यात्रामें क्या-क्या बाधायें आईं और किस तरह उसने उन्हें दूर किया और सफलताके अन्तिम सोपान पर जा चढ़ा। यों तो हिन्दीमें जीवन-चरित्र काफी हैं, किन्तु राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे लिखे गये जीवन-चरितोंमें आत्मीयताके सम्बन्धका अभाव खटकता है।

राष्ट्रके कर्णधार—यह पुस्तक हिन्दी-साहित्यके इसी अभावकी पूर्तिके उद्देश्यसे तैयार की गई है। वर्तमान काल हमारे देशके लिये संक्रांतिका समय है। हम राजनीतिक क्षेत्रमें चौराहे पर खड़े हैं। आज़ादीकी दीप-शिखा अपने हाथोंमें लेकर हम अपना मार्ग प्रशस्त करनेको आगे बढ़ रहे हैं। ऐसी विकट स्थितिमें यह नितान्त आवश्यक है कि देशवासी स्वतन्त्रता-युद्धके संचालकोंको निकटसे पहचानें, उनके गुणोंकी परख करें, उनके अतीत जीवनकी कथाओंका ज्ञान प्राप्त करें, ताकि वे यह जान जायँ कि हमारे सेनानी किस धातुके बने हैं और राष्ट्रीय नौकाको खेनेमें वे कितने निपुण और चतुर हैं।

इसी राष्ट्रीय सेवाकी भावनासे प्रेरित होकर यह पुस्तक तैयार की गई है। इसमें हमारा इरादा देशके और भी कई राष्ट्रीय नेताओं की जीवन-कथाओंका समावेश करनेका था, लेकिन सख्त अफसोस

है कि बड़े प्रयत्नोंके बाद भी यह मनोरथ पूरा न हो सका। उदाहरणार्थ आचार्य नरेन्द्रदेवजीक जीवनीकी सामग्रीके लिए उनके एक निकटस्थ साथीको लिखा था, पर ऐन मौकेपर उन्होंने निराश कर दिया, निदान उनकी कथा इसमें नहीं दी जा सकी। इसके लिए क्षमा-याचनाके अलावा और दूसरा उपाय ही क्या है ?

दो शब्द जीवन-कथाओंके सम्बन्धमें। जीवन-परिचय लिखनेमें इस बातका ज्यादा खयाल रखा गया है कि भाषा-शैथिल्य न आने पाये और केवल घटनाओंका विवरण ही इतना न हो जाय कि पाठकोंका जी ऊबने लगे। इसलिये जीवन-कथाओंका अंश अधिक न देकर रेखा-चित्रको अधिक व्यापक बनाने और राष्ट्रके प्रत्येक 'कर्णधार' के जीवनकी खास-खास खूबियोंका परिचय देनेकी कोशिश की गई है।

इन सोलह जीवन-कथाओंमें दस कथायें हमारे मित्र श्री नव-कुमारजी एम० ए० (पटना) ने लिखी हैं, बाकी छ कथाओंके लेखक हैं श्री देवदूतजी विद्यार्थी (मंत्री, केरल हिन्दी-प्रचार सभा, त्रिपुणीतूरा कोचीन) श्री हरिकृष्ण त्रिवेदी (स० सम्पादक, सैनिक, आगरा) स्व० ब्रजमोहन वर्मा, श्री युसुफ मेहरअली और श्री परमेश्वर सिंह। समय कम होने पर भी इन भाइयोंने पुस्तककी तैयारीमें जो साहाय्य और सहयोग प्रदान किया है और जैसी तत्परता और दिलचस्पी दिखलाई है, उसके लिये हम हृदयसे आभारी हैं।

विश्वमित्र-कार्यालय,
कलकत्ता, शिवरात्रि सं० १९९६ वि०

—श्रीकान्त ठाकुर

राष्ट्रके कर्णधार

महात्मा गाँधी

"When I think of Rolland, I think of Tolstoi. When I think of Lenin, I think of Napoleon. But when I think of Gandhi, I think of Jesus Christ....He lives His life; he speaks His word; he suffers, he strives and will some day nobly die for His kingdom upon earth."

—Rev. Dr. H. Holmes.

"थोड़े शब्दोंमें गांधीको प्रकट नहीं किया जा सकता; क्योंकि थोड़े शब्दों में गाँधीका संक्षेप करना, एक सम्पूर्ण तत्वज्ञान, नीतिशास्त्र, धर्म, अर्थनीति और राजनीतिका निष्कर्ष निकालने जैसा है।" —डा० पट्टाभि सीतारामय्या

कुछ दिन हुए, साम्यवादी नेता श्री जयप्रकाशनारायणने लिखा था—'हम साम्यवादी ईश्वरमें विश्वास नहीं करते, हम इतिहासके पुजारी हैं। गाँधी भारतीय इतिहासका स्रष्टा है, अतः हम उसके अनुगामी हैं।' निस्सन्देह, बीसवीं सदीका भारतीय इतिहास गाँधी के व्यक्तित्व और उसके क्रमिक विकासका इतिहास है। भारतीय जीवनके न केवल राजनीतिक क्षेत्रमें ही, बल्कि धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और बौद्धिक क्षेत्रोंमें भी गाँधीके प्रादुर्भावसे एक महान परिवर्तन उपस्थित हुआ है। गाँधी पहले मनुष्य है, पीछे राजनीतिज्ञ।

मनुष्य गाँधीने मूर्छित भारतकी आत्माको पहचाना, उसके हृदयकी व्यथाको समझा और युग-युगसे संचित उसके संस्कारमें जो कुछ सर्वश्रेष्ठ है, उसे निकाल कर राजनीतिज्ञ गाँधीको दिया। उसी तत्वको राजनीतिज्ञ गाँधीने उसके उद्धारका साधन बनाया। गाँधी हमारी संस्कृति और सभ्यताका प्रतीक है और उसका जीवन 'मानों अन्य संस्कृतियोंकी असारताको चुनौती दे रहा है।' गाँधी ने भारतीय जीवनकी सम्पूर्णताको पकड़ा है, इसीलिये वह इतना जटिल और रहस्यमय है। अक्सर जीवनके भिन्न-भिन्न खण्डोंमें कोई तारतम्य नहीं होता। जो सिद्धान्त एक समाजवादीके लिये मान्य हो सकता है, वही एक आदर्शवादीके लिये भी ग्राह्य होगा, ऐसी बात नहीं, बल्कि अक्सर उनमें विरोध ही रहता है। गाँधी एक साथ ही समाजवादी, आदर्शवादी, तात्विक, व्यावहारिक और राजनीतिज्ञ, सब कुछ है और इसीलिये उसके जीवनमें इतना विरोधाभास है। यह गाँधीकी ही क्षमता है कि उसने भारतीय जीवनके भिन्न-भिन्न खण्डोंमें ऐसा संतुलन बना रखा है कि अन्तरिक संघर्ष पास नहीं फटकने पाता।

आज दुनियामें चारों ओर शस्त्रोंकी झङ्कार गूँज रही है। मानवता—अपने ही खूनकी प्यासी मानवता—विकराल पिशाचिनी की तरह आस्मानमें चक्कर काट रही है। निर्बल और असहाय देशों को चूस-चूस कर एक सबल राष्ट्र दूसरे देशकी छाती पर गोले बर-सानेकी तैयारी कर रहा है। चारों ओर हाहाकार और रणो-न्माद!

ऐसे समयमें यह क्षीणकाय व्यक्ति विश्वके सामने सत्य और अहिंसाका आदर्श उपस्थित करता है। भारतीय जीवन-निशाका ध्रुवतारा तो वह है ही, अब वह सारे विश्वके लिये आध्यात्मिक साहसिकताका प्रतीक बनता जा रहा है।

* * * *

काठियावाड़-प्रदेशके पोरबन्दरमें मोहनदासका जन्म २ अक्टूबर सन् १८६६ को हुआ था। इनके पिता कर्मचन्द गाँधी एक अध्यवसायी, निर्भीक और राज-काजमें निपुण व्यक्ति थे। वे पहले पोरबन्दर और बादमें राजकोट और बाँकानेरमें दीवान रहे। मोहनदासकी माता, कर्मचन्द गाँधीकी चौथी पत्नी, पुतलीबाई एक साध्वी और निष्ठावान रमणी थीं। मोहनदास अपने माता-पिताकी अन्तिम सन्तान थे।

मोहनदासके बचपनकी शिक्षा पोरबन्दरके स्कूलमें हुई। साधारण बुद्धि और औसत प्रतिभा होनेके कारण मोहनदासका विद्यार्थी-जीवन बहुत उज्ज्वल नहीं हो सका। हाईस्कूलमें पहुंचने पर चौदह वर्षोंकी अवस्थामें ही इनका विवाह कस्तूरबाके साथ हुआ। वैष्णव परिवारमें उत्पन्न होने और अपने आस-पास वैष्णव वातावरण होनेके कारण एक ओर तो इनके हृदयमें धार्मिकता और नैतिक आचार-विचारका पौधा पनपा, दूसरी ओर बाल-विवाहके कारण इनके जीवनमें असंयम और आसक्तिकी मात्रा बढ़ी, यहाँ तक कि १८८५ में जिस समय भगन्दर रोगसे पीड़ित इनके पिता मृत्यु-शय्या पर पड़े थे, मोहनदास अपनी पत्नीके पास पड़े हुए थे। इसी

साल कस्तूरबाके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, लेकिन दो-चार दिनोंमें ही उसकी मृत्यु हो गई।

१८८७ में मैट्रिक पास कर मोहनदास भावनगरके श्यामलदास कालेजमें भरती हुए, लेकिन वहाँकी पढ़ाईमें इनकी तबीयत नहीं लगी। घरवालोंने इन्हें इङ्गलैंड भेज कर वैरिस्ट्री पढ़ानेका विचार किया। माताजी वैष्णव आचार-विचारकी थीं, अतः वह विलायत जानेके पहले इनसे मांस, मदिरा और स्त्री-संगसे दूर रहनेकी प्रतिज्ञा करा कर इन्हें जाने देनेके लिये तैयार हुईं। ४ सितम्बर १८८८ को अपनी जातिवालोंके रोकने पर और फलतः जाति-वहिष्कृत होकर मोहनदास विलायतके लिये रवाना हुए। विलायत में रहते हुए अपनी माताके सामने की हुई प्रतिज्ञाओंका इन्होंने पूर्ण-रूपसे पालन किया। इसी प्रवास-कालमें गीता, वाइविल, वुद्ध-चरित और थियोसोफिस्ट-साहित्यके सम्पर्कमें आनेका इन्हें अवसर मिला और इनके अध्ययनसे इनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति और भी विकसित होती गई। १८९१ के जूनमें वैरिस्ट्री पास कर मोहनदास स्वदेशके लिये रवाना हुए। वम्बई पहुंचने पर इनके विलायतके परिचित मित्र डा० मेहताने अपने वड़े भाईके दामाद रायचन्द भाईसे इनका परिचय कराया। गाँधीजीने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है—'रस्किन और टालसटायके ग्रन्थों और रायचन्द भाईकी संगतिका जितना प्रभाव मुझ पर पड़ा, उतना और किसी चीज़का नहीं।'

वेरिस्टर वन कर तो ये लौटे, लेकिन वैरिस्ट्री चलानेकी इनमें विलकुल क्षमता न थी। वम्बईमें एक ओर कानूनका अध्ययन शुरू

हुआ और दूसरी ओर आदर्श भोजनका प्रयोग। गाँधीजी स्वयं लिखते हैं कि 'उस समय मेरी अवस्था ससुरालमें आई हुई नई दुलहिन जैसी हो रही थी।' एक दिन एक मुवक्किलके मुकद्दमेमें बहस करनेके लिये ये अदालतमें खड़े हुए, लेकिन खड़ा होते ही इनके पैर काँपने लगे, सिर घूमने लगा, आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। उसी दिन इन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक पूरी योग्यता प्राप्त न कर लूंगा, तब तक एक भी मुकदमा हाथमें न लूँगा। फलतः आमदनी कम होने लगी और खर्च बढ़ने लगा। अन्तमें निराश होकर ये फिर राजकोट लौट आये।

उसी समय पोरबन्दरके कुछ राज्याधिकारियोंने इनके भाईके खिलाफ़ राज्यके अंग्रेज एजेण्टके पास शिकायत कर दी। इस अंग्रेज से गाँधीजीको विलायतमें काफी जान-पहचान थी। भाईके कहने पर ये उससे मिलने गये, लेकिन वह एजेण्ट बड़ी बेरुखीसे इनसे पेश आया। गाँधीजीने अपनी बातें उससे कहनी चाहीं, लेकिन बिना कुछ कहे-सुने उसने चपरासी बुला कर इन्हें बाहर निकलवा दिया। गाँधीजी अपमानका घूँट पीकर रह गये। लेकिन इस घटनाने उनकी आँखें खोल दीं और पराधीन भारतकी बेबसीका दृश्य उनके मन पर अंकित हो गया।

फिर कुछ दिन इसी तरह कटे। इसी समय बम्बईके सेठ अब्दुल करीमने दक्षिण अफ्रिकामें चलनेवाले अपने एक मुकद्दमेकी देख-रेखके लिये एक सालके लिये इन्हें वहाँ भेजना चाहा। आने-जानेका फर्स्ट क्लासका किराया और १०५ पौण्ड मेहनताना। गाँधीजी

ने हामी भर ली और १८९३ में दक्षिण अफ्रिकाके लिये रवाना हो गये। दक्षिण अफ्रिकाकी अदालतमें उपस्थित होते ही इन पर अपमानकी चोट पड़ी। इनसे पगड़ी उतारनेको कहा गया। इस पर क्रुद्ध होकर ये अदालतसे उठ कर बाहर चले गये।

इस घटनाके विरुद्ध गाँधीजीने अखबारोंमें आन्दोलन करना शुरू किया, जिसकी वजहसे नेटालमें रहनेवाले भारतीयोंसे इनका परिचय बढ़ गया। इसी समय मुकदमेके कामसे इन्हें प्रिटोरिया जाना पड़ा। अफ्रिकामें ट्रेन द्वारा उनकी यह पहली यात्रा थी। फर्स्ट क्लासमें वे सफर कर रहे थे, लेकिन मेरीत्सबर्गमें इन्हें उस डब्बेसे उतार कर तीसरे दर्जेके डब्बेमें जानेके लिये कहा गया। इनके आनाकानी करने पर एक सिपाही बुलवा कर इन्हें धक्के देकर उस डब्बेसे बाहर कर दिया गया। इनका सामान गाड़ीमें ही रह गया और गाड़ी चल पड़ी। सिर्फ एक हैण्डबेग लिये ये वेटिंग रूममें गये और रातभर उस कड़ाकेकी सर्दीमें ठिठुरते रहे। दूसरे दिन इन्होंने उस घटनाकी खबर अपने मित्रों और रेलवेके अधिकारियोंको दी और इसके विरुद्ध आन्दोलन करनेकी प्रतिज्ञा कर चार्ल्सटाउन पहुंचे। वहाँसे जोहान्सबर्ग तक घोड़ा गाड़ीसे जाना पड़ता था। घोड़ा गाड़ीके भीतर गोरे मुसाफिर बैठे हुए थे। भला काले गाँधीको उनके साथ अन्दर कैसे बैठने दिया जाता! गाँधीजीको कोचवानके साथ बैठना पड़ा। वर्ण-भेदके इस दुस्सह अपमानको पीकर गाँधीजी वहीं बैठ कर चलने लगे, क्योंकि इन्हें जोहान्सबर्ग पहुंचना था। थोड़ी देरमें भीतरके एक गोरे यात्रीको गाँधीजीकी जगह पर बैठ कर

सिगरेट पीनेकी इच्छा हुई और वह इन्हें पाँवदान पर बैठनेके लिये वाध्य करने लगा। इनके इनकार करने पर वह इन्हें थप्पड़ोंसे मारने लगा। यह दृश्य देखकर अन्दरके कुछ यात्रियोंको इन पर दया आई और उनके बीच-बचाव करनेके वह इन्हें छोड़ कर अन्दर चला गया। इस तरह अपमानकी चोटें सहते हुए ये जोहान्सवर्ग पहुंचे। यहाँसे आगे जानेवालोंको रेलमें फर्स्ट क्लासका टिकट नहीं मिलता था। गाँधोजीने फर्स्ट क्लासका टिकट माँगा। यदि रास्तेमें गार्ड उतार दे, तो वे कम्पनी पर दावा नहीं करेंगे, ऐसी शर्त करने पर स्टेशन मास्टरने इन्हें फर्स्ट क्लासका टिकट दिया। गाड़ीमें वैठनेके थोड़ी देर वाद ही तीसरे दर्जेमें वैठने पर जोर दिया गया, लेकिन इनके सहयात्रियोंकी दयासे इन्हें उतरना नहीं पड़ा। इस तरह भारतीयोंके प्रति अपमान और घृणित व्यवहारोंकी आप-वीती घटनाओंका अनुभव लेकर गाँधीजी प्रिटोरिया पहुंचे।

प्रिटोरिया पहुंचनेके वाद इन्होंने वहाँ एक भारतीय मंडलकी स्थापना की और इस घृणित अपमानपूर्ण भेदभावके खिलाफ आन्दो-लन करना शुरू किया। ट्रान्सवालमें तो यह अन्याय चरम सीमा तक पहुंचा हुआ था। भारतीय मताधिकारसे वंचित थे, उन्हें सड़क के फुटपाथ पर चलनेका भी अधिकार नहीं था और नौ वजे रात के वाद वे विना परवानेके नहीं निकल सकते थे। भारतीय व्यापा-रियोंको मामूली मुआवज़ा देकर वहाँसे हटा दिया गया था और विना तीन पौण्ड दिये कोई भी भारतीय जमीन पर अधिकार नहीं पा सकता था। प्रिटोरियामें भारतीय मंडलको संगठित कर गाँधी

जीने इन अत्याचारोंके विरुद्ध आन्दोलन किया, जिससे सफ़र वगैरह में भारतीयोंको थोड़ी-सी सहूलियत मिली।

जिस मामलेको लेकर गाँधीजी अफ्रिका आये थे, उसमें उन्होंने सुलह करा दी और उनके इस प्रयत्नसे दोनों पक्षोंको पूर्ण प्रसन्नता हुई। समझौता हो जानेके बाद ये डरबन चले गये और वहाँसे भारत लौटनेकी तैयारी करने लगे, लेकिन उसी समय नेटालकी धारा-सभामें 'हिन्दुस्तानी मताधिकार' को और भी संकुचित कर देने वाले एक प्रस्तावके पेश होनेकी खबर इन्हें मालूम हुई। वहाँके भारतीयोंने इनसे रुक जाने और इस बिलके विरुद्ध आन्दोलन करनेका आग्रह किया। गाँधीजी वहीं रुक गये और नेटाल-स्थित भारतीयोंका संगठन करके इस कानूनके विरुद्ध आन्दोलन करने लगे; लेकिन इतने बड़े विरोधके होते हुए भी वह प्रस्ताव पास हो गया। अब क्या हो? चूँकि गाँधीजी शुरूसे ही आशावादी हैं; इन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी और इसके विरुद्ध भारत तथा इङ्गलैण्डके अखबारोंमें आन्दोलन करने लगे। उपनिवेश-मन्त्री लार्ड रिपनके पास मेमोरियल भेजे गये और उसकी प्रतियाँ भारतीय नेताओंके पास भेजी गईं। इस आन्दोलनका परिणाम हुआ कि उस बिल पर ब्रिटिश सरकारकी स्वीकृति नहीं मिल सकी। गाँधीजी अब तक वहाँके भारतीयोंमें काफी जन-प्रिय हो चुके थे, अतः उन लोगोंने वहीं रह कर वकालत करनेका अनुरोध इनसे किया। उन्होंने भी वहाँ रह कर भारतीयोंकी दुरवस्थाको सुधारनेकी इच्छासे उनके अनुरोधको मान वहीं 'प्रैक्टिस'

शुरू कर दीं। साथ ही, रंग-भेद और भारतीयोंके प्रति दुर्व्यवहारोंके विरुद्ध आन्दोलन भी करते रहे। १८९४ में "नेटाल इण्डियन कांग्रेस" की स्थापना की और उसी साल नेटाल-सरकारने हिन्दुस्तानी कुलियों पर जो २५ पौंड सालानाका कर लगाया था, उसके खिलाफ आन्दोलन शुरू हुआ। इसी आन्दोलनका विकसित रूप आगे चल कर 'दक्षिण अफ्रिकाका सत्याग्रह' हुआ।

१८९६ में अपने परिवारको अफ्रिका ले जाने और भारतमें उस बिलके विरुद्ध जनमत तैयार करनेके विचारसे गाँधीजी भारत लौट आये। हिन्दुस्तान आकर बम्बई, पूना, मद्रास, कलकत्ता आदि जगहोंमें घूम कर उन्होंने उस बिलके विरुद्ध प्रचार किया। इनकी लिखी हुई 'हरी पुस्तक' की हजारों प्रतियाँ चारों ओर बाँटी गईं और हिन्दुस्तानके सभी अंग्रेजी पत्रों द्वारा इस आन्दोलनका समर्थन किया गया। अन्तमें उसी साल अपने परिवारके साथ फिर अफ्रिका लौट गये। हिन्दुस्तानमें वहाँके गोरोंके विरुद्ध इन्होंने जो आन्दोलन किया था, उससे वे बहुत बिगड़े हुए थे और इन्हें पुनः वापस आते देख वे क्रोधसे पागल हो उठे। जहाजसे उतरनेके वक्त इन पर हमला करनेकी उन्होंने तैयारियाँ कर रखी थीं। शामको इन्हें चुपकेसे उतारा गया, लेकिन उद्दण्ड गोरोंने इन्हें घेर लिया। ईंटों, डण्डों, लात-घूसों और थप्पड़ोंसे इन पर हमला किया गया, जिससे वे घायल हो गये; लेकिन पुलिसके आजानेसे इनकी जान बच गई। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्टने छिपा कर इन्हें थाने पर पहुँचा दिया। पीछे इन पर हमला करने वालों पर जब मुकद्दमा चलानेकी

वात चली, तो इन्होंने वैसा करनेसे रोक दिया। इस घटनासे चारों ओर गाँधीजीकी निःस्वार्थ सेवाकी प्रशंसा होने लगी।

१८६७ से' ६६ तक ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध अफ्रिकामें बोअर-युद्ध छिड़ा। गाँधीजीने युद्धमें घायलों और पीड़ितोंकी सेवाके लिये ११०० स्वयंसेवकोंका एक दल तैयार किया और अपनी जान को खतरेमें डालकर युद्ध-क्षेत्रकी ओर प्रस्थान किया। इस युद्धमें गाँधीजीके नेतृत्वमें स्वयंसेवकोंने जो सहायता दी, उसकी प्रशंसा ब्रिटिश सरकारने मुक्तकण्ठसे की। १८६७ और १८६६ में भारतमें जो अकाल पड़े, उसके लिए भी गाँधीजीने अफ्रिकासे चन्दा जमा करके रुपये भेजे। उन्हीं दिनों डरबनमें जो भयंकर प्लेग फैला था, उसमें भी गाँधीजीने संगठित सेवा-दल द्वारा पीड़ितोंकी अपूर्व सहायता की। गाँधीजी की इस सेवा-भावनासे प्रसन्न होकर सरकारने इन्हें 'कैसरे-हिन्द' नामक पदक दिया। इनके अन्य अनुयायियोंको भी पदक और सम्मान-पत्र मिले।

१६०१ में गाँधीजी भारत लौट आये। उसी साल कलकत्तेमें दीनशा ईदुलजी वाचाके सभापतित्वमें भारतीय कांग्रेसका अधिवेशन होने जा रहा था। गाँधीजी भी कलकत्ते जा पहुंचे और अपना परिचय दिये विना कांग्रेसमें काम करने लगे। यहीं श्रीगोखले से उनका परिचय हुआ और घनिष्ठता वढ़ी। उनके प्रयत्नसे दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीयोंके सम्बन्धमें कांग्रेसमें एक प्रस्ताव हुआ। कलकत्तेमें कुछ दिनों तक रहकर गाँधीजी वर्मा चले गये और वहाँसे लौट कर वनारसमें श्रीमती एनीवेसेण्टसे मिले।

फिर राजकोट आये और वहाँसे बम्बई जाकर पुनः वैरिस्ट्री शुरू कर दी, लेकिन कुछ ही दिन वाद ही अफ्रिकासे उनकी वुलाहट आई और अपने परिवारको यहीं छोड़कर वे वहाँके लिये रवाना हो गये। १६०३ की १ जनवरीको वे प्रिटोरिया पहुंचे और श्री चैम्बरलेनसे मिलनेवाले भारतीय डेपुटेशनमें सम्मिलित हुए। उसी साल इन्होंने 'ट्रान्सवाल ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' कायम किया और दक्षिण अफ्रिकाके भारतीयोंकी समस्याओं पर प्रकाश डालने और उनकी उन्नतिके लिए आन्दोलन करनेके विचारसे 'इण्डियन ओपीनियन' नामक अंग्रेजी पत्र निकलना शुरू किया। अगले साल जोहान्सवर्गमें जोरोंका प्लेग फैला। गाँधीजीने म्युनिसीपैल्टिीसे वार-वार अनुरोध किया, लेकिन भारतीय मुहल्लेकी सफाई की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। फिर आपने अपने साथियोंके साथ सेवा-सुश्रूषाका कार्य शुरू कर दिया। १६०६ में जूलू-विद्रोह हुआ, उसमें भी इन्होंने एक संगठित सेवा-दलके साथ सम्मिलित होकर प्रशंसनीय कार्य किया।

इस सेवा-कार्यसे लौट कर गाँधीजीने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करनेकी प्रतिज्ञा की और अपने रहन-सहनको और भी सादा बना दिया। गाँधीजीने सार्वजनिक सेवा-कार्यके साथ-साथ स्वाध्याय और आत्म-शुद्धिके प्रयोग भी शुरू किये और तरहसे इन्होंने तपस्वीका जीवन अंगीकार कर लिया। 'इण्डियन ओपिनियन' के दफ्तरमें काम करने वाली मिस डिक और मिस इलेशिना आदि गोरी नवयुवतियों के आचार-व्यवहार पर गाँधीजीके त्यागपूर्ण

जीवनका प्रभाव पड़ा और आगे चलकर जब सत्याग्रह छिड़ा, तो अकेली इलेशिनाने ही आफिसका सारा कार्य सँभाला ।

१९०६ में जूलू-विद्रोह समाप्त हुआ और ट्रान्सवाल सरकारने कौंसिलमें 'ड्राफ्ट एशियाटिक ला अमेण्डमेण्ट बिल पेल' पेश किया । इस बिलके अनुसार ट्रान्सवालमें रहनेवाले प्रत्येक भारतीयको एक परवाना लेना पड़ता, जिसके लिए उसकी अपनी सभी अँगुलियों और अँगूठोंके निशान देने होते और सदा यह परवाना अपने साथ रखना पड़ता । भारतीयोंके लिए इससे बढ़कर और अधिक अपमानकी बात क्या होती ? यह कानून तो निर्दयता और नीचता की गहरी चोट थी । ट्रान्सवाल-निवासी भारतीयोंमें असन्तोष और विरोधकी आग भड़क उठी । गाँधीजीके नेतृत्वमें उन्होंने विद्रोहका झण्डा उठाया । धीरे-धीरे यह आग सुलगती गई—विरोधकी भावना भी प्रबल होती गयी । इस बिलको रद्द करानेके लिये गाँधीजीको एक डेपुटेशनके साथ विलायत भेजा गया, लेकिन १९०७ की १ जनवरीको ट्रान्सवालको स्वायत्त-शासनका अधिकार मिल गया, अतः ब्रिटिश सरकार उसके निर्णयमें कुछ भी हस्तक्षेप नहीं कर सकी । फलतः १ अगस्त १९०७ को परवाना लेनेका दिन नियत कर दिया गया । गाँधीजी और उनके अनुयायियोंने इस दिवसका घोर विरोध किया, स्वयंसेवकोंने एशियाटिक आफिस पर पिकेटिंग की और गिरफ्तारियाँ शुरू हो गयीं । एक हफ्तेमें १०० सत्याग्रही जेलमें ठूँस दिये गये, लेकिन आन्दोलन चलता रहा । अन्तमें जेनरल स्मट्स और गाँधीजीके बीच समझौता हुआ और सत्याग्रह बन्द

कर दिया गया, लेकिन स्मट्सने समझौतेकी शर्तोंकी अवहेलना की, फलस्वरूप पुनः तीव्र वेगके साथ सत्याग्रह शुरू हुआ। नियत दिवस को परवानोंकी होली जलाई गई। सत्याग्रहमें जोर आता गया और गिरफ्तारियाँ भी चलती गयीं। गाँधीजीके एक मित्रने उन्हें ग्यारह सौ एकड़ जमीन आश्रम बनवानेके लिये दी थी, जिसमें उन्होंने 'टालस्टाय आश्रम'की स्थापना की। यह आश्रम सत्याग्रह-आन्दोलनका केन्द्र बना। यहीं आन्दोलनकारियोंको सत्याग्रही-जीवनकी शिक्षा-दीक्षा मिलती थी। स्वयं गाँधीजीका जीवन सत्य और अहिंसाका आदर्श था, फिर उनके अनुयायी उनके प्रभावसे कैसे वंचित रहते? १९१३ में सरकारने ट्रान्सवाल-निवासी भारतीयोंके उन विवाहोंको, जो ईसाई मतके अनुसार नहीं हुए थे, नाजायज़ करार दे दिया। अपमानकी यह अन्तिम चोट थी। गाँधीजीने पुरुष, स्त्री और बच्चों के एक अपार जन-समूहके साथ सत्याग्रह करनेके लिये ट्रान्सवाल की यात्रा की। गिरफ्तारियाँ हुई और जेलमें गाँधीजी तथा इनके अन्य साथियोंके साथ बुरेसे बुरा व्यवहार किया। भारतमें श्रीगोखलेने इस सत्याग्रहके लिये प्रचण्ड आन्दोलन किया और श्री एण्डरूजके प्रयत्नसे पुनः गाँधीजी और जेनरल स्मट्समें समझौता हुआ, जिसमें भारतीयोंकी विजय हुई। इस तरह १९०६ में जिस आन्दोलनका सूत्रपात हुआ था, वह आठ वर्षोंके बाद १९१४ में सफलताके साथ समाप्त हुआ।

१९०१ में भारतसे अफ्रिकाके लिये रवाना होनेवाले गाँधी और १९१४ का सत्याग्रह समाप्त होनेके बादके गाँधीमें महान अन्तर था।

ये चौदह वर्ष गाँधीजीके जीवनके भिन्न-भिन्न प्रयोगों और आत्म-निरीक्षणके दिन थे। धीरे-धीरे मनुष्य गाँधी मानव-सुलभ दुर्बलताओंको कठोरतापूर्वक दबाता हुआ 'महात्मापन' की ओर बढ़ रहा था। जीवनके सभी अंगोंमें इस समय उनकी साधना तीव्र गति से चल रही थी। चाय और नमकका व्यवहार छोड़नेके बाद सूर्यास्तके बाद इन्होंने भोजन करना भी छोड़ दिया था। सोमवारको मौन-दिवस का पालन और ब्रह्मचर्य-पालनके निमित्त बकरीके दूधका व्यवहार उनकी साधना और प्रयोगोंके सफल परिणाम निकले।

इस तरह १९१४ में 'महात्मापन' की सीढ़ियों पर तेजीसे डग बढ़ाता हुआ पैंतालीस वर्षोंका 'यह बूढ़ा नौजवान' अपनी मातृभूमिको लौट आया। उसके बाद ही खतरेकी घंटी बजी और भीषण संघर्ष का सूत्रपात हुआ।

हिन्दुस्तान आने पर गाँधीजी एक साल तक देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें घूमकर राजनीतिक परिस्थितिका अध्ययन करते रहे। इस भ्रमणमें जहाँ-जहाँ वे जाते, उनका शानदार स्वागत होता और हजारोंकी संख्यामें जनता उनके दर्शनके लिये इकट्ठी होती। गुरुकुल काँगड़ीमें आपको जो मानपत्र मिला, उसीमें पहले-पहल इन्हें 'महात्मा' नामसे सम्बोधित किया गया था। अन्तमें १९१५ में अहमदाबादमें आश्रम स्थापित कर वे वहीं रहने लगे। इधर जबसे गाँधीजी भारत आये थे, उनका प्रयत्न कांग्रेसके दोनों दलों—नरम और गरम—में समझौता करा देनेकी ओर था। १९१६ में

लखनऊ-कांग्रेसके अवसर पर उनका यह प्रयत्न सफल भी हो गया। उन दिनों बिहार प्रान्तके चम्पारण जिलेमें नीलकी खेती करने वाले अंग्रेज कोठीवालोंकी ज्यादती पराकाष्ठाको पहुंची हुई थी। किसानोंको फी बीघे तीन कट्ठा नील उपजा कर मुफ्तमें अपने मालिकको देना पड़ता था। अंग्रेजोंके इस अत्याचार की खबर गाँधोजीको लगी और वे बिहारके लिये चल पड़े। चम्पारणके गाँव-गाँवमें घूम कर वहाँके किसानोंकी दशाकी जाँच की। सरकारसे लिखा-पढ़ी करके इन्होंने एक जाँच-कमिटी नियुक्त कराई, जिसके सदस्य वे भी थे। जाँच-कमेटीने किसानों की तमाम शिकायतें सच्ची बतलायीं और निलहे गोरोंके लाख विरोध करने पर भी सरकारने किसानोंकी माँगोंको पूरा कर दिया। गाँधीजी बिहारके किसानोंके लिये देवता जैसे पूज्य बन गये।

चम्पारणका मसला हल होते ही गाँधीजी अहमदाबाद चले गये। वहाँके मजदूरोंमें मिलमालिकोंके प्रति भयंकर असन्तोष फैलता जा रहा था। वहाँ पहुंच कर गाँधीजीने मजदूरोंको अहिंसात्मक रह कर सत्याग्रह करनेके लिये तैयार किया, लेकिन हड़ताल शुरू होने पर वे अहिंसात्मक नहीं रह सके। फलस्वरूप गाँधीजीने २१ दिनोंका अपना प्रथम उपवास प्रारम्भ किया। उपवासके अन्तमें मिलमालिकोंको झुकना पड़ा और मजदूरोंकी विजय हुई।

इन दिनों यूरोपीय महायुद्ध भयंकर गतिसे चल रहा था। अभी-तक गाँधीजीको ब्रिटिश सरकारकी नेकनीयतीमें पूर्ण विश्वास था, इसलिये गाँधीजी इस युद्धमें ब्रिटेनको सहायता देनेको तैयार हो

गये। उन्हें विश्वास था कि युद्धके समाप्त होनेपर ब्रिटिश सरकार भारतको आंशिक स्वतंत्रता देगी। फलतः रँगरूट भरती किये जाने लगे और गाँधीजी देशमें घूम-घूम कर जनताको युद्धमें जाकर सरकारको सहायता देनेके लिये तैयार करने लगे। इसके परिणाम-स्वरूप हिन्दुस्तानके १२ लाख १५ हजार सैनिक युद्ध-क्षेत्रमें जा डटे, जिनमें एक लाख से भी अधिक लोग लड़ते-लड़ते मर गये, लेकिन युद्ध समाप्त होते-होते भारतीयोंकी इस सहायताके पुरस्कारमें ब्रिटिश सरकारने हिन्दुस्तानके सिरपर रौलेट एक्ट नामक काला कानून थोप दिया। इस कानूनके विरुद्ध देशव्यापी प्रचण्ड आन्दोलन हुआ, सभाएँ हुईं, आवेदनपत्र भेजे गये और हर तरहसे विरोध प्रकट किया गया। अन्तमें वैध आन्दोलनको असफल होता देख गाँधीजीने देशव्यापी सत्याग्रह प्रारम्भ करनेकी सम्मति दी। बम्बईमें केन्द्रीय सत्याग्रह-सभाकी स्थापना की गई और गाँधीजी उसके संचालक बनाये गये। सत्याग्रहका प्रतिज्ञापत्र २८ फरवरी १९१९ को प्रकाशित किया गया और ६ अप्रैलको सत्याग्रह-दिवस मनानेकी घोषणा की गई। देशके सार्वजनिक जीवनमें यह एक अभूतपूर्व घटना थी। सत्याग्रह-दिवसकी तैयारीमें सारा देश दीवाना हो रहा था। अन्तमें वह दिन भी आया। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली—चारों ओर विराट सभाएँ हुईं और एक सभा हुई अमृतसरमें भी। जालियाँवाला बागमें सत्याग्रह-दिवस मनानेके लिये पंजाबके हजारों नर-नारी, बूढ़े-बच्चे और जवान इकट्ठे हुए। जनता सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा लेनेको शान्तिपूर्वक बैठी थी कि एकाएक

जेनरल डायरकी आज्ञासे सशस्त्र सैनिकोंने बागको चारों ओरसे घेर लिया और असहाय निर्दोष जनता पर गोलियोंकी बौछार शुरू कर दी गयी। बागके चारों तरफ सशस्त्र सैनिक बन्दूकें ताने खड़े हैं। जनता भाग कर बाहर जाय, तो कैसे ? निरपराधोंके रक्तसे जालियाँवाला बागकी भूमि लाल हो गई, फिर भी डायरका बर्बर हृदय नहीं पसीजा, लोगोंको नाकके बल घसीटा गया। सारे देशमें इस दुर्घटनाके कारण हाहाकार मच गया और असन्तोषकी ज्वाला धधक उठी। आँसू पोंछनेके लिये ब्रिटिश सरकारने इस कारनामेकी जाँचके लिये हंटर-कमिटी बैठाई और कांग्रेसने भी एक जाँच-समिति भेजी।

उधर खिलाफ़तको लेकर हिन्दुस्तान के मुसलमान अंग्रेजी सल्तनतसे असन्तुष्ट हो रहे थे। अली-भाइयोंके सहयोगसे देशमें और भी जागृति आ गई थी। इसी समय लोकमान्य तिलक का स्वर्गवास हो गया। सितम्बर सन् १९२० ई० में कलकत्तेमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ, जिसमें देशने एक स्वरसे गाँधीके अहिंसात्मक असहयोगके कार्यक्रमको स्वीकार कर लिया। रही-सही कमी उसी साल नागपुर कांग्रेसमें पूरी हो गई। 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' द्वारा गाँधीजी देशको अहिंसात्मक सत्याग्रहकी दीक्षा देते रहे। सारे देशमें एक अजीब उत्साह छा गया। आनन-फाननमें सत्याग्रहके खर्चके लिए तिलक-स्वराज्य-फण्डमें एक करोड़ रुपया जमा हो गया, कांग्रेसके एक करोड़ मेम्बर बनाये गये और बीस लाख चर्खे चालू किये गये। सरकारी खिताब, स्कूल कालेज,

कचहरी, कौंसिल और विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारकी धूम मच गई। इसके बाद गाँधीजी बारडोलीके लगान-बन्दी आन्दोलनमें लगे; लेकिन इसी समय चौरीचौरा काण्ड हो गया। इस घटनासे गाँधीजीके आत्म-विश्वासको धक्का लगा और उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि देश अभी पूर्ण अहिंसात्मक युद्धके लिए अच्छी तरह तैयार नहीं है। फलतः इन्होंने तत्काल असहयोग-आन्दोलन बन्द कर दिया, लेकिन आन्दोलन स्थगित होनेपर भी गाँधीजी गिरफ्तार कर लिये गये और राजद्रोहके अपराधमें इनपर मुकदमा चलाया गया। इन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और इन्हें छः वर्षोंकी कैदकी सजा दे दी गई। दो वर्ष जेलमें रहनेके बाद बीमारी की अवस्थामें सन् १९२४ ई० में ये रिहा कर दिये गये। बाहर आकर कुछ दिन इनके स्वस्थ होनेमें लगे। उसके बाद इन्होंने देखा कि सारे देशमें राजनीतिक आन्दोलनके बदले साम्प्रदायिकता जोर पकड़ रही है। दिल्लीमें भयंकर साम्प्रदायिक दंगा हो गया, जिसके प्रायश्चित्तमें इन्होंने इक्कीस दिनोंका उपवास किया। इसके फलस्वरूप मोतीलालजीकी अध्यक्षतामें एकता-सम्मेलनका आयोजन हुआ और उसमें साम्प्रदायिक समझौता हुआ। उसी वर्ष बेलगांवमें होने वाले कांग्रेस-अधिवेशनके सभापति गाँधीजी निर्वाचित किये गये और खादी-प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारणके रचनात्मक कार्यक्रमकी इनकी योजना स्वीकृत की गई। इधर कांग्रेसमें पार्लमेंटरी मनोवृत्ति जोर पकड़ती जा रही थी और गया कांग्रेसके अवसर पर पं० मोतीलाल एवं देशबन्धु चितरञ्जनदासके

नेतृत्वमें 'स्वराज्य पार्टी' की स्थापना भी हो चुकी थी, लेकिन गाँधीजीको 'स्वराज्य पार्टी' के कार्यक्रममें विश्वास न था। सन् १६२८ ई० के कलकत्ता-कांग्रेसमें युवक-दलने जवाहरलालजीके नेतृत्वमें पूर्ण-स्वराज्यकी मांग पेश करनेके लिए जोर लगाया, लेकिन गाँधीजी उस समय भी औपनिवेशिक स्वराज्यके ही पक्षमें थे। अन्तमें उनके प्रयत्नोंसे दोनों दलोंमें समझौता हुआ और सरकारको एक सालका अवसर दिया गया। दिसम्बर १६२६ ई० में गाँधीजी तत्कालीन वायसराय लार्ड इर्विनसे मिले, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। अन्तमें ३१ दिसम्बर सन् १६२६ ई० की आधीरातको अल्टीमेटमका समय पूरा हो जानेपर लाहौर कांग्रेसके अवसर पर जवाहरलालजीकी अध्यक्षतामें 'पूर्ण स्वतन्त्रता' का प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हुआ।

२५ जनवरी १६३० को वायसरायने असेम्बलीमें एक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने साइमन-कमीशनकी जाँच और हिन्दुस्तानको धीरे धीरे आंशिक स्वतंत्रता देने की बात कही। इधर २६ जनवरी को सारे भारतमें 'स्वतंत्रतादिवस' मनाया गया और गाँधीजीकी प्रसिद्ध ग्यारह शर्तोंकी माँग दुहराई गई। १० मार्चसे सत्याग्रह आरम्भ करनेका निश्चय किया गया। १२ मार्चको गाँधीजीकी ऐतिहासिक डाँडी-यात्रा शुरू हुई। ७६ चुने हुए सत्याग्रहियोंके साथ डाँडीमें नमक-कानून भंग करनेके लिये गाँधीजीने पैदल-यात्रा प्रारम्भ की और ६ अप्रेलको डाँडी पहुंच कर उन्होंने नमक-कानून भंग किया। फिर क्या था? सारे देशमें नमक-कानून-भंगकी धूम

मच गई। कहीं कहीं सरकारकी ओरसे गोलियाँ भी चलीं, लेकिन नमक-सत्याग्रह पूर्ण जोशके साथ चलता रहा। ५ मईको गाँधीजी गिरफ्तार कर लिये गये। देशव्यापी गिरफ्तारियोंका दौरदौरा शुरू हुआ और जेलोंके बैरक खचाखच भरने लगे; लेकिन आन्दोलन पूर्ण गतिके साथ चलता गया। सरकार अपनी सारी शक्ति लगा कर भी आन्दोलनको दबा नहीं सकी। अन्तमें उसने समझौतेकी बात-चीत शुरू की, फलतः गाँधी-इर्विन-समझौता हुआ। सभी राजबन्दी रिहा कर दिये गये और कांग्रेस परसे रुकावट हटा ली गई। आर्डिनेन्स-राज्यका अन्त हुआ। उसी साल कराची-कांग्रेसने एक स्वरसे गाँधीजीको भारतीय कांग्रेसका एकमात्र प्रतिनिधि बना कर इङ्गलैण्डमें होने वाली गोलमेज़ परिषद्में भेजनेका निश्चय किया। विलायत जाकर गाँधीजीने स्पष्ट शब्दोंमें भारतकी मांगोंकी घोषणा की, लेकिन गोलमेज़ परिषद् तो ब्रिटिश कूटनीतिकी एक चाल थी। उसी समय लार्ड विलिंगडन वायसराय बना कर भेजे जा रहे थे। गाँधीजीके वापस आनेसे पहले वे भारत पहुंच गये और आते ही दमन-चक्र जारी कर दिया। गाँधीजीके आते आते बहुतसे नेता गिरफ्तार कर लिये गये। यहां पहुंचते ही गाँधीजी भी गिरफ्तार कर यरवदा जेलमें डाल दिये गये। आर्डिनेन्स पर आर्डिनेन्स जारी किये जाने लगे और आन्दोलनको कुचल डालनेके लिए सरकारने अपनी सारी शक्ति लगा दी। लेकिन आन्दोलन फिर भी तेजीके साथ चलता रहा।

इसी समय ब्रिटिश सरकारने भारतके सिर पर 'साम्प्रदायिक

निर्णय' की व्यवस्था लाद दी, जिसमें अछूतोंके लिए हिन्दू समाजसे पृथक् निर्वाचनकी व्यवस्था की गई थी। जेलसे ही गाँधीजीने इसका विरोध किया; अन्तमें इसके विरुद्ध उन्होंने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। सारे देशमें उनके इस निश्चयसे खलबली मच गई। सरकारका दिल डाँवाडोल हो गया और उसने गाँधीजीको रिहा कर दिया। सभी नेता दौड़े हुए पूना पहुंचे और वहीं 'पूना-पैक्ट' नामक समझौता हुआ, जिसे ब्रिटेनने स्वीकार कर लिया, तब जाकर गाँधीजीने उपवास भंग किया। इस बार जेलसे बाहर आने पर गाँधीजीने देखा कि दमन-चक्र पूर्ववत् जारी है और हिन्दुस्तानके लोग लगातार लड़ते-लड़ते थके-से दिखलाई दे रहे हैं। अतः उन्होंने आन्दोलन पुनः स्थगित कर देनेकी सलाह दी। आन्दोलन पुनः स्थगित कर दिया गया।

इस निश्चयके बाद गाँधीजीने १८ वर्षोंके परिश्रमसे निर्मित अपने साबरमती आश्रमको तोड़ दिया। १ अगस्त १९३३ को आश्रमके अपने ३२ साथियों साथ गुजरातके 'रास' नामक स्थानमें जाकर किसानोंकी दशाका अवलोकन करनेका अपना विचार इन्होंने बम्बई सरकारके पास लिख भेजा। इस पर साथियों सहित वे गिरफ्तार कर लिये गये, लेकिन बादमें छोड़ दिये गये और उन्हें पूना की सीमासे बाहर न जाने की आज्ञा हुई। इस आज्ञाका उन्होंने उल्लङ्घन किया, फलतः वे पुनः गिरफ्तार कर लिये गये। गाँधीजी को एक वर्षकी सजा दे दी गई और वे यरवदा जेलमें रखे गये। जेलमें पहुंचते ही इन्होंने पुनः हरिजन-आन्दोलनके लिए उपवास

शुरू किया। अस्वस्थताके कारण अबकीके उपवासमें इनकी दशा चिन्तनीय हो गई, अतः सरकारने इन्हें बिना शर्त रिहा कर दिया।

इसके बादसे गाँधीजी हरिजन-आन्दोलनमें लगे। 'नवजीवन' का स्थान 'हरिजन' ने लिया और देशके कोने-कोनेमें घूम कर इन्होंने हरिजन-उत्थान और अस्पृश्यता-निवारणके लिए आन्दोलन शुरू किया। इसी आन्दोलनके सिलसिलेमें गुरुवयूरके मन्दिरमें अछूतोंके प्रवेश पर प्रतिबन्धको हटवानेके लिए श्रीकेलप्पनने आमरण अनशन प्रारंभ करनेकी नोटिस दी। उनके साथ इनके भी अनशन शुरू करनेकी संभावना थी। देशमें इसके लिए आन्दोलन किया और हरिजनोंके लिए उस मन्दिरमें प्रवेशकी आज्ञा मिल गई।

१५ जनवरी १९३४ को विहारका प्रलयकारी भूकम्प आया और पीड़ितोंकी सहायताके लिए उन्होंने विहारका दौरा शुरू किया। इसी समय ३१ मार्च १९३४ को डा० अन्सारीकी अध्यक्षतामें नेताओंका एक सम्मेलन हुआ, जिसमें पुनः कौंसिल-प्रवेशका प्रस्ताव कांग्रेसके सामने रखने की बात तय हुई। मईमें पटनेमें होनेवाली कार्य-समिति और महासमितिकी बैठकोंमें यह प्रस्ताव आया और गाँधीजीने भी इसका समर्थन किया।

अक्टूबरके अन्तमें देशरत्न राजेन्द्रप्रसादजी की अध्यक्षतामें बम्बई-कांग्रेसका अधिवेशन हुआ, जिसमें इन्होंने कांग्रेससे अपना सम्बन्ध सदाके लिए तोड़ दिया—वे इसके साधारण सदस्य भी नहीं

रहे, लेकिन कांग्रेसका पिछले पाँच वर्षोंका इतिहास क्या यह नहीं वतलाता कि कांग्रेससे अलग होकर भी गाँधीजी उसके संचालनमें पूर्ण रूपसे विद्यमान हैं ?

कांग्रेससे अलग होते ही इन्होंने ग्राम-उद्योग-संघ और कांग्रेस का नया विधान नामकी दो चीजें कांग्रेसको दीं और स्वयं ग्राम-उद्योगके कार्यक्रममें लग गये। १९३७ में कांग्रेसने कौंसिल-निर्वाचनमें भाग लिया और ११ प्रान्तोंमेंसे ७ प्रान्तोंमें उसकी शानदार विजय हुई। राजवन्दियोंकी रिहाईके प्रश्नको लेकर १९३८ में वैधानिक संकट आ खड़ा हुआ था, लेकिन सरकारकी दूरदर्शितासे यह संकट क्षणिक ही रहा। गाँधीजीने राजवन्दियोंकी रिहाईके लिए देशव्यापी आन्दोलन शुरू किया, जिसके फलस्वरूप आजीवन कालापानीकी सज़ा पाये हुए क्रान्तिकारी कैदी भी आज चिड़ियोंकी तरह स्वतंत्र होकर घूम-फिर रहे हैं।

× × × × ×

१९३६ से गाँधीजी वर्धाके पास सेगाँवमें आश्रम वना कर रह रहे हैं। कांग्रेससे अलग रह कर भी वे कांग्रेसके सूत्रधार वने हुए हैं। कांग्रेसके सामने जव कभी कोई कठिन समस्या आ उपस्थित होती है, कार्य-समितिके सदस्य वर्धामें जा जुटते हैं और गाँधीजीकी मन्त्रणासे ही सव कुछ तय होता है। पिछले सालसे देशी रियासतोंकी राजनीतिक समस्याओंमें भी गाँधीजीने सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया है। राजकोटके मसलेको लेकर इन्होंने जो उपवास किया, उससे देशी राज्योंकी समस्या अखिल भारतीय समस्या

बन गई और कांग्रेसके साथ उसका घना सम्बन्ध स्थापित हो गया। हिन्दू-मुस्लिम एकताके सम्बन्धमें भी गाँधीजीने पिछले साल अथक परिश्रम किया। कई बार वायसराय और मुस्लिम लीगके नेता जिन्ना साहबसे इस सम्बन्धमें मिले, लेकिन अभी तक इस मसले का कोई हल नजर आता नहीं दिखाई देता। गाँधीजीकी प्रेरणासे शायद यह प्रश्न हल हो जाय!

पिछले साल यूरोपीय युद्धके छिड़ने पर गाँधीजीने ब्रिटिश सरकारसे भारतके सम्बन्धमें अपनी नीति स्पष्ट करनेका आग्रह किया और सरकारके अस्पष्ट उत्तर देने पर उनकी प्रेरणासे कांग्रेसने वैधानिक असहयोगकी नीति ग्रहण की; फलतः कांग्रेसी मंत्रिमण्डलोंने इस्तीफा दे दिया और आज तक वे तटस्थ हैं। देश पर एक बार फिर अनिश्चितता और बेचैनीके बादल घिरते जा रहे हैं। यूरोपीय युद्धकी प्रगति दिन-प्रति-दिन तीव्र होती जा रही है। भारत सरकार भारतीयोंकी अपना विधान स्वयं बनानेकी मांगको ठुकरा कर साम्प्रदायिकताकी ओटमें हमारे ऊपर कूटनीतिका जाल फैलाने की चेष्टा कर रही है।

× × × × ×

भारतके इतिहासमें आजका समय अनेक तरहकी उथल-पुथलसे भरा हुआ है। प्रगतिवादी नेता एक ओर विद्रोहकी रण-भेरी फूँक रहे हैं, तो दूसरी ओर साम्यवादी-दल किसानों और मजदूरोंको शोषकोंके विरुद्ध लड़नेके लिये उत्साहित कर रहा है। देशकी राजनीतिमें अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिको देखते हुए एक महान् परिवर्तन

उपस्थित होनेवाला है। ऐसे समयमें ३५ करोड़ भारतीयोंकी सतृष्ण आँखें एकमात्र 'सेगाँवके इस संत' पर लगी हुई हैं।

आधुनिक संसारके महापुरुषोंमें गाँधी ही एक ऐसा व्यक्ति हैं, जिसके पास अपना एक पैसा भी नहीं, जिसका व्यक्तिगत खर्च अन्य 'महापुरुषों' के सिगरेटके खर्चका आधा भी नहीं।

आधुनिक संसारके इतिहासमें गाँधीका ही एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसकी अंगुलियोंके इशारे पर पैंतीस करोड़ व्यक्ति—संसारकी आबादीका लगभग पंचमांश—अपने प्राणोंकी आहुति देनेके लिए तैयार हो सकता है।

बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भसे आज तक दुनियाके धरातल पर गाँधी ही एक ऐसा पुरुष है, जिसने पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन किया है।

गाँधीजीको बहुत अच्छी लगनेवाली चीजें हैं—खुली हवा, उन्मुक्त हँसी, छोटे बच्चे, मित्रोंकी गपशप और चुलबुले मज़ाक। गाँधीजीको जिससे सख्त नफरत है, वह है झूठ और हिंसा।

गाँधीजी कट्टर हिन्दू हैं, लेकिन उनका यह दृढ़ विश्वास है कि संसारके सभी महान धर्मग्रन्थ ईश्वरकी वाणी हैं। गीता, बाइबिल, तालमद, जेन्दावस्ता, कुरान और त्रिपिटकोंमें उनकी समान आस्था है।

गाँधीजीकी अहिंसा इतनी सूक्ष्म है कि एक बार वह अपने अनुयायियोंसे यह कहने जा रहे थे कि पेड़से फल तोड़ कर मत खाओ, क्योंकि डालसे लगे हुए फलको तोड़ लेनेमें 'हिंसाकी आशंका' है।

गाँधीजीके भोजनमें शायद ही कभी पकाई हुई चीज शामिल रहती

हो। एक प्याला बकरीका दूध, खजूर, अखरोट, शहद, तस्तरीभर ताजा शाक, अंगूरके कुछ दाने, सेव और नारङ्गीके कुछ टुकड़े, यही उनका औसत भोजन है।

इंगलैण्डमें रहने वाले भारतीय विद्यार्थियोंने गाँधीजीके स्वागतमें दो सौ बकरियोंका जुलूस निकालना चाहा था। 'इण्डिया आफिस' ने इस पर रोक लगा दी। बकरियों पर यह प्रतिबन्ध गाँधीजीको बुरा लगा था।

रोज चार बजेके पहले उठना गाँधीजीका नियम है—उसके बाद प्रार्थना और टहलना। उनका टहलना धीरे धीरे नहीं, काफी रफ्तारके साथ होता है। हट्टेकट्टे लोगोंको भी उनके साथ क़दम-ब-क़दम टहलनेमें दिक्कत होती है। उनकी प्रार्थना 'हाउस आफ कामन्स' की सभामें भी बन्द नहीं हुई थी।

गाँधीजीका प्रधान आमोद उसका स्नान है। आराम करनेके पहले लगभग चालीस मिनट तक वह गर्म पानीमें स्नान करते हैं और अक्सर पानीके हौजमें पढ़ते भी हैं।

गाँधीजीको संगीतसे बहुत प्रेम है। उनका कहना है—'संगीतने मुझे शान्ति दी है·······संगीतने क्रोध पर विजय पानेमें मेरी सहायता की है।'

स्वयं एक महाकाव्यका विषय होते हुए भी गाँधीजी एक महान् कलाकार हैं। उनके शब्दोंमें—"तपस्या जीवनमें सबसे बड़ी कला है। जीवन समस्त कलाओंसे श्रेष्ठ है।······· जो अच्छी तरह जीना जानता है, वही सच्चा कलाकार है।·······"

नींद पर गाँधीजीका असाधारण अधिकार है। अगर वह तीस मिनटके लिए सोना चाहते हैं, तो वह एक मिनट भी अधिक नहीं सो सकते। मोतीलालजीके दाह-संस्कारसे लौटते हुए मोटरमें ही उन्होंने नींद बुला ली। अचानक मोटर उलट गई और वह सड़क पर जा पड़े; लेकिन घबड़ाये हुए मित्रोंने पाया कि वह सड़कके किनारे नींदमें बेखबर पड़े हैं।

गाँधीजीको अपनी पराजय स्वीकार करनेमें जरा भी झिझक नहीं होती। अपनी पराजयकी स्वीकृतिमें ही उनकी विजयकी घोषणा है।

मनुष्यत्वकी सतहसे देवत्वकी ऊँचाईकी ओर उठती हुई आत्मा के संकोचहीन और निर्मम विश्लेषणके रूपमें गाँधीजीकी 'आत्मकथा' मानवताके लिए एक 'व्यावहारिक' बाइबिल है।

—श्री नवकुमार एम० ए०
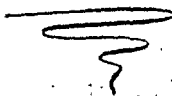
पं० जवाहरलाल नेहरू

"His political integrity is unshakable. Nothing can deflect him from the path he has chosen, if he thinks it to be right.........He is certainly one of the finest characters in public life I have ever met."

—John Gunther
(Inside Asia).

रूसकी राज्य-क्रान्तिमें लेनिनके बाद ट्राटस्कीका स्थान जितने महत्वका था, भारतीय राजनैतिक आन्दोलनमें महात्मा गाँधीके बाद जवाहरलालका स्थान उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। गाँधीजीको अगर हम भारतीय समस्याओंका सूत्रकार कहें, तो जवाहरलाल उन समस्याओंके भाष्यकार हैं। गाँधीजीकी राजनैतिक शक्तिका मूलाधार अगर संयम और तपस्या है, तो जवाहरलालजीके राजनैतिक विश्वासकी भित्ति बलिदान और अनुशासनकी नींव पर खड़ी है।

जवाहरलाल—भारतीय युवकोंकी विचार-धाराओंका प्रतीक जवाहरलाल हिन्दुस्तानके बिना ताजके बादशाह हैं। सौम्य आकृति, प्रशस्त ललाट, दीप्तिपूर्ण आँखें—निस्सन्देह ये किसी महान्

व्यक्तित्वकी घोषणा करती हैं, लेकिन इस महानताकी ओटमें, छिपी हुई सबसे आकर्षक जो वस्तु है, वह है जवाहरलालके हृदयकी कोमलता, 'यौवनका लचीलापन', खतरोंके प्रति उनका आग्रह और उनकी प्यारी झुँझलाहट।

× × × ×

आधुनिक संसारके इतिहासमें नेहरू-पिता-पुत्रका-सा ज्वलंत उदाहरण शायद दूसरा नहीं है—हिन्दुस्तानके इतिहासमें तो यह अकेला है ही। सन् १८८९ ई० का १४ नवम्बर। जवाहरलालका जन्म उस समय हुआ था, जब सारे हिन्दुस्तानमें मोतीलालजीकी वकालतकी तूती बोल रही थी। वैभव और ऐश्वर्य तो बहुतोंके पास देखे जाते हैं, लेकिन उनका उपभोग पंडित मोतीलाल जैसा बहुत कम ही लोग कर पाते हैं। जीवनका सारा आनन्द, भोग-विलास और ऐशो-इशरतकी सारी सामग्री, मोतीलालजीके लिए कुछ भी अप्राप्य न थी। दुनियाके ऐसे ही स्वर्गके एक कोनेमें जवाहरलालका जन्म हुआ। पंडित मोतीलाल जैसे शाहदिल व्यक्तिकी एकमात्र सन्तानके लालन-पालनका क्या पूछना? सेवाके लिए गोरी दाइयाँ और शिक्षाके लिए अंग्रेज अध्यापिकाएँ नियुक्त हुईं, खेल-कूदके लिए बढ़िया-से-बढ़िया सामग्रियोंका प्रबन्ध हुआ, तैरना सीखनेके लिए सुवासित जलके हौज बने और बालक जवाहरलालने जिस किसी चीज़के लिए ज़रा भी ज़ुबान हिलाई, वह तुरत मुहैया हो गई। इस तरह वैभव और विलासिताके वातावरणमें जवाहरलालके बचपनके ग्यारह वर्ष बीत गये।

वारहवें वर्षमें उनकी शिक्षा-दीक्षा प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट श्री० एफ० टी० ब्रुक्सके तत्वावधानमें शुरू हुई। जवाहरलालका ब्रुक्स महोदयके संसर्गमें आना उनके जीवनकी एक महत्वपूर्ण घटना है। निस्सन्देह आजके जवाहरलालमें उनके बचपनके शिक्षक ब्रुक्स महोदयका प्रभाव अस्पष्ट रूपसे बोल रहा है। श्री ब्रुक्स अंग्रेज होते हुए भी भारतीय संस्कृति और आचार-विचारके अनन्य समर्थक थे। उनका अधिकांश समय आत्म-चिन्तन और स्वाध्यायमें व्यतीत होता था, लेकिन जिस समय वह 'आनन्द-भवन' में आये, उन दिनों वहाँ पाश्चात्य सभ्यता और उसके आकर्षक उपादानोंका रेलमपेला लगा हुआ था। आँखोंमें चकाचौंध पैदा कर देनेवाली विलासिताके वातावरणमें, हृदयके हिन्दू, पर जातिके एक अंग्रेज सज्जनके तत्वावधानमें जातिके हिन्दू, पर हृदयके अंग्रेज पंडित मोतीलालजीके पुत्र भारतके भावी युवक-सम्राट जवाहरलालकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। कितना बड़ा विरोधाभास !

उधर ब्रुक्स महोदयका पढ़ाना प्रारम्भ हुआ और इधर जवाहर-लालके हृदय पर उनके व्यक्तित्वका प्रभाव अलक्षित रूपसे गहरा होने लगा। मोतीलालजीकी आकांक्षाको यह देखकर धक्का-सा लगा कि ब्रुक्सके प्रभावमें आकर जवाहरलाल सिनेमा-थियेटरको निरर्थक समझने लगे हैं। फलतः ब्रुक्स महोदयको 'आनन्द-भवन' से रुखसत होना पड़ा और जवाहरलालके लिए दूसरा शिक्षक नियुक्त किया गया।

विलायती शिक्षाका आकर्षण मोतीलालजीको वरवस विदेशकी

ओर खींच रहा था, लेकिन पितृ-स्नेह अकेले जवाहरलालको बाहर भेजनेमें वाधक था। अन्तमें सन् १६०४ ई० में पण्डितजी सपरिवार इंगलैण्डके लिये चल पड़े। वहाँ पहुँच कर विख्यात विद्यालय हैरोमें, जिसे शेरिडन, वायरन जैसे लेखक, पील, वाल्डविन और चर्चिल जैसे राजनीतिज्ञ और लार्ड हेस्टिंग्स, लार्ड लिटन, लार्ड हार्डिञ्ज और लार्ड डलहौजी जैसे गवर्नर-जेनरल उत्पन्न करनेका गौरव था, जवाहरलालजीका नाम लिखाया गया। हैरोमें पढ़नेवाले भारतीय विद्यार्थियोंमें कपूर्थलाके युवराज, वड़ौदाके स्व० राज-कुमार जयसिंह, सर सुलेमान आदि प्रमुख थे। दो वर्ष वाद वहांसे इन्ट्रेंसकी परीक्षा पास कर वह केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके ट्रिनिटी कालेजमें भरती हुए और यहाँसे जूलोजी (जन्तु-विज्ञान), वॉटनी (वनस्पति-विज्ञान) और केमिस्ट्री (रसायन-विज्ञान) में सम्मान सहित बी० ए० पास किया। जवाहरलालकी असाधारण योग्यतासे प्रभावित होकर केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने विना परीक्षा लिये ही उन्हें एम० ए० आनर्सकी डिग्री दे दी। उसके वाद वैरिस्ट्री पढ़नेके लिए वह लन्दनके 'इनर टेम्पुल' में भरती हुए, सन् १६१२ ई० में यहाँसे वार-एट-ला की उपाधि प्राप्त की और उसी साल हिन्दुस्तान लौट आये। चार वर्षके वाद सन् १६१६ ई० में दिल्लीके पं० जवाहरलाल कौलकी पुत्री कुमारी कमलासे इनका विवाह हुआ और अगले वर्ष कुमारी इन्दिराका जन्म हुआ। सन् १६२४ ई० में इन्हें एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था, जो जन्मके तीसरे ही दिन वह चल वसा।

× × × ×

यों तो इङ्गलैण्डसे लौटते ही जवाहरलाल भारतीय राजनीतिके सम्पर्कमें आने लगे, पर क्रियात्मक रूपमें सन् १९१४ ई० से इन्होंने भाग लेना शुरू किया। उन दिनों यह इलाहाबाद हाईकोर्टमें बैरिस्ट्री करते थे। प्रवासी भारतीयोंकी सहायताके लिए श्री गोखलेने एक अपील निकाली थी और सारे हिन्दुस्तानसे चन्दा इकट्ठा किया जा रहा था। इस अवसर पर धन-संग्रह करनेके लिए इलाहाबादमें जो कमिटी बनाई गई थी, उसका मन्त्रित्व इन्हीं पर सौंपा गया और अपनी तत्परतासे इन्होंने पचास हजार रुपये संग्रह कर दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रह-आन्दोलनको चलानेके लिए भेजे थे। विलायतसे वापस आते ही सन् १९१२ ई० में पटनेमें कांग्रेसका जो अधिवेशन हुआ था, उसमें वह दर्शककी हैसियतसे सम्मिलित हुए थे। सन् १९१३ ई० में युक्त-प्रान्तीय कांग्रेस कमिटीके सदस्य बने और महायुद्धके बाद कांग्रेसको सफलता न मिलनेके कारण श्रीमती एनीबेसेण्टने जो होम-रूल-लीग कायम की थी, उसकी संयुक्त-प्रान्तीय शाखाके संयुक्त मन्त्री बनाये गये।

यद्यपि जवाहरलाल विलायतसे पूरे 'साहब' होकर लौटे थे, लेकिन यहाँ आते ही उनके विचारोंमें बहुत बड़ा परिवर्तन होने लगा। इन्हें बहुत नजदीकसे जानेवाले डाक्टर सच्चिदानन्द सिंहने लिखा है कि—'लाल-बाल-पाल' के उग्र विचारोंका जवाहरलालके कोमल हृदय पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था और उनके हृदयमें देशकी अवस्थाको देखकर एक बेचैनी-सी होने लगी थी। फिर तो जब १९१९ ई० में रौलेट-एक्टके खिलाफ सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू

हुआ, तो जवाहरलाल कैसे पीछे रह जाते ! लेकिन उनके इस क्रियात्मक सहयोगके कारण मोतीलालजीके हृदयको गहरी चोट लगी। जवाहरलालजो पर उन्होंने जितने भी मनसूबे बाँध रखे थे, वे सब चकनाचूर हो गये। पिता और पुत्रके वीच विचारोंके ऐसे गहरे संघर्षका उदाहरण शायद ही कहीं मिले। लेकिन अन्तमें जवाहरलालजीकी दृढ़ताके सामने पितृ-हृदय का असमंजस मोमकी तरह पिघल गया और "पिताकी ममता पर देशकी ममताकी ऐसी विजय हुई कि पुत्र अपने साथ पिताको भी उस ओर ले आनेमें सफल हो गये।" सन् १९१९-२० ई० में जवाहरलालजी अवधके किसानोंके बीच अदम्य उत्साह और अथक परिश्रमके साथ काम करते रहे। इनकी दृढ़ताके कारण यह आन्दोलन सफल हुआ और सरकारको 'अवध-टिनेंसी' कानून बना कर किसानोंकी माँगोंको पूर्ण करना पड़ा।

इसी साल इलाहाबादसे 'इण्डिपेण्डेण्ट' नामक दैनिक पत्र निकाला गया, जिसके संचालनमें जवाहरलालजीका प्रमुख हाथ था। 'इण्डिपेण्डेण्ट' राष्ट्रीय विचारोंका एक निर्भीक पत्र था और इसलिए प्रकाशित होते ही वह सरकारकी आँखोंमें काँटेकी तरह चुभने लगा। कुछ ही दिनों तक चलकर उसे सरकारी कोपकी अग्निमें अपनी आहुति दे देनी पड़ी। इसी समय भारतीय इतिहासकी सबसे बड़ी रोमांचकारी घटना घटी। यूरोपीय महायुद्धमें ब्रिटिश सरकार की ओरसे भारतने अपने असंख्य नौजवानोंकी जो आहुति दी थी, उसके पुरस्कारमें उसे जलियाँवाला-हत्याकाण्डका अपमान सहना पड़ा।

इस हत्याकाण्ड और पंजाबमें फौजी हुकूमतकी नंगी करतूतोंकी जाँचके लिए मोतीलालजीके साथ जवाहरलालको भी पंजाबके गाँव-गाँवमें घूमनेका अवसर प्राप्त हुआ। देशके अपमानके कारण इनके हृदयमें विद्रोहकी जो ज्वाला धधक रही थी, उसमें इस दौरेके सिलसिलेमें अपनी आँखों देखी भारतीय किसानोंकी दुरवस्थाने आहुतिका काम किया और इसके फलस्वरूप, कुछ दिनों बाद जब गाँधीजीने असहयोग-आन्दोलनका बिगुल फूंका, तो बैरिस्ट्री छोड़ कर जवाहरलालजी उसमें कूद पड़े।

इस आन्दोलनमें ही सर्वप्रथम जवाहरलालजी की अपूर्व संगठन-शक्ति और कर्त्तृत्व-क्षमताका परिचय मिला। राजसी ठाट-बाट और आमोद-प्रमोदमें पला यह नौजवान देशकी आज़ादीके लिये दीवाने सैनिकके रूपमें निकल पड़ा। संयुक्त-प्रान्तके कोने-कोनेमें जवाहरलालके त्याग, निर्भीकता और कर्मण्यताकी तूती बोलने लगी। सोये हुए राष्ट्रके सामने एक उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित हुआ और उसके प्रभावके कारण नवयुवकोंके हृदयमें देश-प्रेमका सागर लहराने लगा। १९२०—२२ में जगह—जगह घूम-घूमकर जवाहरलालजी सत्याग्रह-आन्दोलनकी दीक्षा देते रहे, लेकिन भला सरकारको यह कबतक बर्दाश्त होता? १९२१ में इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और छः महीनेकी सजा दे दी गयी। इस समाचारसे जनता क्षुब्ध हो उठी और चारों ओर इनकी गिरफ्तारीके विरुद्धमें सभाएँ की गयीं। अन्तमें सरकारको बाध्य होकर कुछ ही सप्ताह बाद इन्हें छोड़ देना पड़ा, लेकिन जिसके हृदयमें

आज़ादीकी ज्वाला सुलग रही थी, उसे चैन कहाँ ? जेलसे निकलते ही जवाहरलाल दूने उत्साहके साथ सत्याग्रहमें लग गये। १९२२ की मईमें इन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया। इन पर १२४ ए धाराके अनुसार अभियोग लगाया गया था, लेकिन सजा हुई ३८५ धाराके अनुसार ! "जबर्दस्ती रुपया वसूल करनेमें सहायता देने" के अभियोगमें इन्हें अट्ठारह महीनेकी कड़ी कैदकी सजा हुई। इस अवसरपर जवाहरलालजीने अदालतमें जो अपना बयान दिया था, वह बहुत ही महत्वपूर्ण था, इनका एक-एक शब्द राष्ट्र-प्रेम और देश-गौरवकी भावनासे ओत-प्रोत था, लेकिन नौ मास तक जेलमें रहनेके बाद इन्हें इस बार भी छोड़ दिया गया। इस बार जेलसे मुक्त होने पर इन्हें संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमिटीका मन्त्री बनाया गया। इसी समय चौरीचौरा-काण्ड हो जानेके कारण गाँधीजीने सत्याग्रह-आन्दोलनको स्थगित कर दिया। लेकिन जवाहरलालजीको सार्वजनिक सेवाके बिना चैन कहाँ ? १९२३ ई० में जेलसे छूटनेके बाद दिल्लीमें होनेवाले कांग्रेसके अधिवेशनमें आप सम्मिलित हुए। इस कांग्रेसमें कौंसिल-प्रवेशके कार्यक्रमको लेकर दो दल हो गये थे। कौंसिल-प्रवेशके कार्यक्रममें आपका ज़रा भी विश्वास नहीं था, फिर भी आपने दोनों दलोंमें समझौता करानेकी चेष्टा की और उसी साल फिर दिल्लीमें कांग्रेसका एक विशेषाधिवेशन हुआ, जिसमें दोनों दलोंमें समझौता हो गया।

इन्हीं दिनों नाभा राज्यमें अकालियोंका सत्याग्रह चल रहा था। आचार्य गिडवानी और डा० किचलू वहाँ जाकर गिरफ्तार हो चुके

थे। कांग्रेसके अधिवेशनके बाद यह भी वहाँ जा पहुंचे। वहाँ जाते ही १४४ धाराके अनुसार इन्हें जुलूस निकालने और राज्यमें घूमने की मनाही कर दी गई और इसकी अवहेलना करने पर इन्हें १५३ और १८२ धाराओंके अनुसार गिरफ्तार कर लिया गया। मुकदमा चला और इन्हें ढाई सालकी सजा दी गई; लेकिन न जाने क्यों तुरत ही इन्हें रिहा कर दिया गया।

१६२२ में इलाहाबादकी म्युनिसिपैलिटीने सर्वसम्मतिसे इन्हें चेयरमैन निर्वाचित किया। १६२५ तक इस पद पर रह कर इन्होंने जिस तत्परता, निर्भीकता और योग्यताके साथ म्युनिसिपैलिटीका प्रबन्ध किया, उसकी प्रशंसा सरकारी रिपोर्टमें भी मुक्त कण्ठसे की गई।

इसी अवसर पर नागपुरमें झण्डा-सत्याग्रह शुरू हुआ। देशके कोने-कोनेसे स्वयंसेवकोंके जत्थे इस सत्याग्रहमें भाग लेनेके लिये आने लगे और गिरफ्तारियोंका ताँता लग गया। एक ही दिनमें चार-चार पाँच-पाँच सौ गिरफ्तारियाँ होती थीं। उन दिनों नागपुरमें जाकर आपने सत्याग्रहियोंके बीच बिजलीका सञ्चार कर दिया और सरकारी दमनकी पराकाष्ठाके समय भी आन्दोलन पूर्ण प्रगतिके साथ चलता रहा।

इस झण्डा-सत्याग्रहमें इन्होंने स्वतन्त्रताकी लड़ाईके लिये सुशिक्षित और संगठित सैनिक-दलकी नितान्त आवश्यकता देखी और इसीलिये कोकनाडा-कांग्रेसके अवसर पर इन्होंने हिन्दुस्तानी सेवा-दलकी स्थापना की। डाक्टर हार्डीकरने अपने कुछ मित्रोंके साथ

इस आन्दोलनमें पूर्ण सहयोग दिया और जवाहरलालजी सर्व प्रथम सङ्गठित स्वयंसेवक-दलके 'कमाण्डर-इन-चीफ' बनाये गये। कोकनाडा-कांग्रेसके अवसर पर इन्हें कांग्रेसका प्रधान मन्त्री भी बनाया गया। तबसे १९३६ तक जेल और राष्ट्रपतित्व कालको छोड़ कर बराबर यही मन्त्री रहते आये थे। अपने मन्त्रित्व-कालमें इन्होंने महासमिति-कार्यालयको सरकारी दफ्तरोंके ढंगपर व्यवस्थित किया, सारे देशमें कांग्रेस-कार्यालयोंका सुन्दर सङ्गठन किया।

१९२६ के आरम्भमें श्रीमती कमला नेहरूका स्वास्थ्य गिरने लगा और क्षय रोगके चिन्ह प्रकट होने लगे। अतः उनके साथ जवाहरलालजीको स्वीजरलैण्ड चला जाना पड़ा। विदेशमें रहते हुए आपने अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिका गहरा अध्ययन किया। १९२७ में जेनेवामें होनेवाले साम्राज्य-विरोधी-संघके अधिवेशनमें भारतीय राष्ट्र-सभाके प्रतिनिधिकी हैसियतसे सम्मिलित हुए और उसके पाँच अध्यक्षोंमें (आइन्स्टीन, रोम्याँ रोलाँ, श्रीमती सनयातसेन, जार्ज लान्सबरी के साथ) यह भी एक अध्यक्ष चुने गये। इन्हें उसका एक प्रधान मन्त्री भी बनाया गया, लेकिन इन्होंने अस्वीकार कर दिया और संघकी कार्यसमितिके सदस्य चुने गये। १९२७ में रूसी सरकारने इन्हें निमन्त्रित किया और वहाँ जाकर प्रजातन्त्रके दसवें वार्षिकोत्सवमें सम्मिलित हुए। रूससे वे हिन्दुस्तान लौट आये।

स्वदेश लौटने पर जवाहरलालजी विदेशमें रहते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिको देखकर आपने जो विचार स्थिर किये थे,

उनका प्रचार बड़ी दृढ़ताके साथ करना शुरू किया। उन दिनों उनकी वाणीमें एक अजीब जोश था और उनकी कलममें एक अपूर्व जादू। नवीन स्फूर्ति, नवीन विचार-धारा, नवीन दृष्टिकोण—जवाहरलाल एक प्रतिभा-सम्पन्न क्रान्तिकारी विचारकके रूपमें प्रकट हुए। आते ही उन्होंने हिन्दुस्तानके प्रमुख भागोंका दौरा किया और उन स्थानोंमें दिये गये उनके भाषणोंसे देशमें एक नई बौद्धिक चेतना और नव-जीवनका विकास शुरू हुआ। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रोंमें एक व्यापक क्रान्तिकी भावना राष्ट्रके कोने-कोनेमें गूँजने लगी और स्वाधीनताका अर्थ सिर्फ ब्रिटिश सरकारसे मुक्ति नहीं, बल्कि जीवनके सभी क्षेत्रोंमें स्वतन्त्रता समझा जाने लगा। १९२७ में मद्रासमें होनेवाली कांग्रेसके अवसर पर इन्होंने पूर्ण स्वाधीनताका प्रस्ताव पेश किया, लेकिन यद्यपि वह प्रस्ताव पास न हो सका, तो भी इनकी जगाई हुई ज्योति प्रज्वलित होती गई और फलस्वरूप १९२८ में दिल्लीमें "भारतीय स्वाधीनता-संघ" की स्थापना हुई। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वाधीनताके सर्वव्यापी ध्येयको सामने रख कर संस्थापित यह पहली संस्था थी।

जिस तरह जवाहरलालजीके नये विचारोंसे देशकी विचार-धारामें एक नया दृष्टिकोण उपस्थित हुआ, उसी तरह देशके एक बहुत बड़े समुदाय—मजदूर वर्गमें भी आज़ादीकी एक नई भावना उपस्थित हुई। मजदूर-समस्या और मजदूर-आन्दोलनमें जवाहर-लालजीके विचारोंसे एक बड़ी प्रगति आ गई। १९२९ में झरिया और

नागपुरमें होनेवाले मजदूर-सम्मेलनोंके सभापतिके पदसे आपने जो भाषण दिये थे. वे भारतीय मज़दूर-आन्दोलनके प्रकाश-स्तम्भ थे।

१९२८ में कलकत्ताके कांग्रेस-अधिवेशनके अवसर पुनः जवाहरलालजीने पूर्ण-स्वाधीनताका प्रस्ताव पेश किया। राष्ट्रपति मोतीलालजी तथा अन्य नेता इस प्रस्तावको असामयिक समझ रहे थे। अतः वह प्रस्ताव तो पास न हो सका, किन्तु सरकारको एक चुनौती दी गई कि वह कांग्रेसकी माँगोंको एक वर्षकी अवधिके भीतर पूर्ण कर दे, अन्यथा कांग्रेसको उनकी पूर्तिके लिये आन्दोलन करना पड़ेगा।

एक साल बीत गया। १९२९ का दिसम्बर आया। देशने एक स्वरसे जवाहरलालजीको राष्ट्रपति निर्वाचित किया। १९२९ की लाहौर-कांग्रेस भारतीय राजनीतिके इतिहासमें सुनहले पन्नोंमें स्थान पायेगी। भारतीय कांग्रेसके इस उच्चासन पर पहली बार एक साम्यवादी नेता बैठता दिखाई पड़ा। देशके नौजवानोंमें एक अजीब उन्माद था, जैसे राष्ट्रका यौवन उमड़ आया हो। ३१ दिसम्बरको बारह बजे रातके बाद जब पूर्ण स्वतन्त्रताका प्रस्ताव पास हुआ, तो कांग्रेसमें उपस्थित सभी व्यक्ति आनन्दसे नाच उठे। "इस अधिवेशन जैसा उन्मादकारी कांग्रेसका दूसरा अधिवेशन नहीं हुआ। एक खतरनाक प्रस्ताव पास कर, खतरेके समय राष्ट्रका यौवन पागलकी भाँति अट्टहास कर रहा था।"

१९३० की २६ जनवरीको सारे राष्ट्रने एक स्वरसे स्वाधीनताका वह प्रतिज्ञापत्र दुहराया, जिसका उल्लेख भारतके इतिहासमें भारतीय

'मैगाना-कार्टा' के नामसे लिया जायगा। कहा जाता है, यह प्रतिज्ञा-पत्र जवाहरलाल जीने ही तैयार किया था। गांधीजीने सरकारको 'अल्टिमेटम' दिया, डाँडीकी ऐतिहासिक यात्राका आयोजन हुआ और सारे देशमें सभी जगह तूफानकी तरह नमक-कानून भी अवज्ञा की जाने लगी। युक्त-प्रांतमें १० अप्रैलको इसी अवज्ञाके कारण जवाहरलालजी गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें छः मासकी सजा दी गई। ११ अक्टूबरको ये जेलसे रिहा हुए। बाहर आते ही इन्होंने मोतीलालजी को बहुत बीमार पाया; लेकिन कर्त्तव्य सामने खड़ा था। इन्होंने करबन्दी-आन्दोलनका सूत्र-पात कर दिया और स्वयं जुट गये। इनके सहयोगसे आन्दोलनमें दूना उत्साह आ गया। बीमारीकी हालत में ही मोतीलालजीने तीस हज़ारका इन-कम-टैक्स देनेसे इन्कार कर दिया। ऐसी परिस्थितिमें सरकार कबतक जवाहरलालजी को बाहर रहने देती? वे पुनः गिरफ्तार-कर लिये गये, लेकिन तीन मास बाद मोतीलालजीकी बीमारी बढ़ जानेके कारण मुक्त कर दिये गये। कुछ दिनोंके बाद मोती-लालजी सदाके लिये चले गये, लेकिन ऐसी भयानक आपत्तिके समय भी जवाहरलालजी ज़रा भी विचलित न हुए और गाँधी-इर्विन समझौतेके बाद इन्होंने सारे देशका दौरा किया। अधिक मेहनत और परिश्रमके कारण इस समय इनका स्वास्थ्य कुछ गिरने लगा था, अतः कमला नेहरूके साथ वे कुछ दिनोंके लिये लंका चले गये।

१९३१ के अन्तमें कांग्रेसकी कार्य-समितिकी बैठकमें शरीक

होने जवाहरलालजी इलाहाबादसे बम्बई चले। लेकिन सरकारने उन्हें इलाहाबाद छोड़नेसे मना किया, जिसका उन्होंने उल्लङ्घन किया। फलतः इलाहाबादसे कुछ दूर पर वे गिरफ्तार कर लिये गये और ढाई वर्षोंके लिये कैदखानेमें डाल दिये गये। १९३३ के अगस्तमें सजा पूरी होनेके कुछ दिन पूर्व वे रिहा कर दिये गये।

इसके बाद १९३४ की १५ जनवरीको बिहारका प्रलयकारी भूकम्प हुआ और जवाहरलालजी कलकत्तेसे दौड़े हुए मुज़फ्फरपुर जा पहुँचे। उनके आगमनसे पीड़ित जनताको अत्यधिक सन्तोष मिला, वहांसे लौटकर उन्होंने भूकम्प-पीड़ितोंके सहायतार्थ रुपयोंके लिये अपील की और इलाहाबादमें एक सहायक-फण्डका आयोजन किया। लेकिन देशमें चारों ओर शांति होते हुए भी जवाहरलाल जीका जेलसे बाहर रहना सरकारकी आँखोंमें काँटेकी तरह खटक रहा था। इसलिये कलकत्तेमें दिये गये इनके भाषणोंको राजद्रोह-त्मक बतलाकर इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और और दो वर्षों की सजा दी गयी।

इस बीच श्रीमती कमला नेहरूका स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता जा रहा था। डाक्टरोंकी रायसे उन्हें भुवाली सैनिटोरियममें ले जाया गया, लेकिन सुधरनेकी अपेक्षा उनकी अवस्था और भी बिग-ड़ती गई। ऐसी परिस्थितिमें जवाहरलालको रिहा कर देनेके लिये सरकारपर दबाव डाला गया। सरकारने उनके सामने कुछ शर्तें रखीं, जिनपर रिहा होना उन्होंने नामंजूर कर दिया। तब सरकार ने उन्हें अलमोड़ा जेलमें रख दिया। वहाँसे वे सप्ताहमें एक बार

कमलाजीसे मिल सकते थे। उधर कमलाजीकी हालत और भी चिन्ताजनक होती गई, लेकिन सरकारने उन्हें रिहा नहीं किया। अन्तमें जब गाँधीजीने वायसरायको तार दिया, तो वे मुक्त कर दिये गये और हवाई जहाजसे कमलाजीकी साथ वे जर्मनीके लिये रवाना हो गये। जर्मनीमें कमलाजीके कुछ दिनोंतक दवा होती रही, अट्ठाइस फरवरीको एकाएक वे इस दुनियासे सदाके लिये चल बसीं।

जवाहरलालजी की जिन्दगी की यह सबसे कठिन परीक्षा थी। कमला, जो उनके शुष्क राष्ट्रीय जीवनकी एकमात्र सरसता थी, असमयमें चल बसीं। राष्ट्रने एक स्वरसे पुनः उन्हें राष्ट्रपति निर्वाचित किया। एक ओर अपनी सबसे बेशकीमत चीजके चले जानेका सदमा, दूसरी ओर राष्ट्रकी आकुल पुकार! जवाहर-लालजीका कर्मठ हृदय अपनी वैयक्तिक वेदनाको बिलकुल दबा कर अपने देशवासियोंकी पुकार पर पागलकी तरह दौड़ पड़ा। २८ फरवरीको कमलाजीका देहावसान हुआ। १० मार्चको जवाहरलालजी जर्मनीसे भारत पहुंचे और ११ मार्चको इलाहाबादमें कमलाजीके भग्नावशेषको गंगामें समर्पित कर, लखनऊ-कांग्रेसकी देखभालके लिए जा डटे और उसके बादसे तो जवाहरलालका जीवन कुछ ऐसा हो गया है गोया राष्ट्रके सिवा उनके लिये और कोई भी चीज चिन्तनीय है ही नहीं।

१६३६ के अप्रैल में लखनऊ-कांग्रेस हुई और उसी साल दिसम्बर में फैजपुर-कांग्रेसका भी आयोजन हुआ और इस अधि-

वेशनके लिये भी इन्हें ही राष्ट्रपति चुना गया। लगातार दो वार राष्ट्रपति होनेका सौभाग्य सबसे पहले इन्हें ही मिला है। लाहौर-कांग्रेसमें इनके राष्ट्रपति निर्वाचित होनेके समय गाँधीजीने कहा था—"बहादुरीमें कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देश-प्रेममें उनसे आगे कौन जा सकता है ?..........वह स्फटिक मणिकी भाँति पवित्र हैं; उनकी सत्यशीलता सन्देहके परे है। वह अहिंसक और अभिनन्दनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथोंमें सुरक्षित है।" अपने इस कर्मठ योद्धाको लगातार दो वार राष्ट्रपति चुन कर राष्ट्रने भी बतला दिया कि जवाहरलालजीमें हमारा अटल विश्वास है।

१६३६-३७ वर्ष जवाहर लालजीके जीवनका सबसे कार्य-संकुल समय रहा है। सारे देशमें एक साथ ही प्रान्तीय धारा-सभाओंके लिये चुनावका नियंत्रण करना क्या कोई आसान काम था ? भूत-पूर्व राष्ट्रपति देशरत्न राजेन्द्रप्रसादजीने तूफानी दौरेकी जो परम्परा स्थापित कर दी थी, उसे जवाहरलालजीने पराकाष्ठाको पहुंचा दिया। हिमालयसे कुमारी अन्तरीप तक और पेशावरसे पूर्वी बंगाल तक जवाहरलालजीने देशका चप्पा-चप्पा छान डाला। बाईस महीनोंमें इन्होंने १,१०,००० मीलोंका सफर किया था। एकबार पंजाबमें तीन दिनोंमें ही इन्होंने नौ सौ मील तय कर डाले थे और एक वार एक सप्ताह में एक सौ पचास भाषण दिये थे। बैलगाड़ीसे लेकर हवाई जहाज तककी सवारीका उपयोग इस दौरेमें हुआ था। बिजलीकी तरह जवाहरलालजी देशके एक छोरसे दूसरे छोर तक विरोधियोंकेहर मोर्चे पर, कांग्रेसका विजय-मंत्र सुनानेके लिए उप-

स्थित रहते। उनकी इसी तत्परता और कठिन परिश्रमका फल था कि ग्यारह प्रान्तोंमें कांग्रेस-पार्टीकी शानदार विजय हुई।

१९३७ में इन तूफानी दौरोंके अतिरिक्त, "नागरिक-स्वतंत्रता संघ" की स्थापना इनका दूसरा महत्वपूर्ण काम हुआ। इन्होंने कांग्रेस महासमितिके दफ्तरको "स्वराज्य-भवन' में फिरसे व्यवस्थित किया और उसके अन्तर्गत 'अन्तर्राष्ट्रीय विभाग' 'जन-सम्पर्क-विभाग' और 'अर्थ-विभाग' खोलकर महत्वपूर्ण अभावोंकी पूर्ति की।

इसी साल 'मेरी कहानी' अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओंमें प्रकाशित हुई। प्रकाशित होते ही हिन्दुस्तानकी प्रायः समस्त भाषाओंमें इसका अनुवाद हो गया और विदेशोंमें भी इसकी लाखों प्रतियाँ बिकीं। 'मेरी कहानी' के सम्बन्धमें प्रसिद्ध लेखक जॉन गुन्थरने लिखा है— "तीक्ष्ण अनुसन्धानोंसे भरी हुई यह केवल एक आत्मकथा ही नहीं, बल्कि यह एक विस्तृत समाजकी कहानी है, एक अपूर्ण राष्ट्रके जीवन और विकासकी तस्वीर है।" लार्ड इर्विनने भी इसके बारेमें कहा था—" 'मेरी कहानी' को पढ़े बिना कोई भी व्यक्ति हिन्दुस्तान को नहीं समझ सकता।" 'मेरी कहानी' के प्रकाशनके बादसे जवाहरलालजीके व्यक्तित्वकी धाक सारे संसारमें छा गई है और उनकी गणना संसारके सर्वश्रेष्ठ प्रभावशाली पुरुषोंमें होने लगी है।

जवाहरलालजीने फैजपुर कांग्रेसमें ही 'राष्ट्रीय पंचायत' द्वारा अपना शासन-विधान स्वयं तैयार करनेका विचार रखा था। नये शासन-विधान और संघ-शासनका विरोध करनेके लिये दिल्लीमें राष्ट्रीय

सम्मेलनका जो ऐतिहासिक समारोह हुआ था, उसका सभापति इन्हें ही चुना गया था।

"इस सम्मेलनके अवसर पर केन्द्रीय एवं प्रान्तीय धारा-सभाओंके कांग्रेसी सदस्योंसे देशके प्रति वफादार रहनेकी जो शपथ ली गई थी, वह दृश्य भारतीय आज़ादीके इतिहासके नये अध्यायका शीर्षक था"। पद-ग्रहणके सख्त विरोधी होते भी राष्ट्रके अनु-शासन और नियंत्रणके सामने जवाहरलालजीने सिर झुकाया, लेकिन देशको सर्वदा यह चेतावनी देते रहते थे कि हम पद-ग्रहण करके अपनी लड़ाई वन्द हुई नहीं समझ लें।

अण्डमानकी राजनीतिक वन्दियोंकी रिहाई, मुस्लिम लीगके साथ साम्प्रदायिक समस्याओंको सुलझानेकी चेष्टा, चीनकी सहायताके लिये 'कांग्रेस सेवा-दल' भेजनेका प्रयत्न जैसे कार्य तो इनके राज-नैतिक-जीवनकी साधारण घटनायें हैं।

१० जनवरी सन् १९३८ ई० को माता स्वरूपरानी भी जवाहर-लालजीको छोड़कर चल वसीं। माताजीकी मृत्युके पाँच-सात दिनोंके वाद वे सीमा-प्रान्तके दौरेके लिए रवाना हो गये। पुनः जूनमें इन्होंने यूरोपके लिये प्रस्थान किया। इस वारकी यूरोप-यात्रामें मिस्र, स्पेन, फ्राँस, जेकोस्लोवाकिया, इङ्गलैण्ड, चीन आदि देशोंमें इनके भ्रमण और भाषणोंके प्रभावसे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें भारतको एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। पाँच महीने वाद जब ये स्वदेश लौटे, तो भारतवासियोंने इनका अपूर्व स्वागत किया और इनके प्रति अपने सम्मानके भाव प्रदर्शित किये।

यूरोपीय युद्धके छिड़ने पर भारत-सरकारकी युद्धमें भाग लेनेकी नीतिके कारण कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंने जो पद-त्याग किया, उसमें भी जवाहरलालजीका पूरा हाथ था।

× × × ×

जवाहरलाल एक कर्मठ योद्धा ही नहीं, केवल एक गम्भीर विचारक और राजनीतिक महापुरुष ही नहीं, एक शक्तिशाली लेखक भी हैं। जॉन गुन्थरके अनुसार 'संसारके जीवित लेखकोंमें शायद ही दर्जनभर ऐसे व्यक्ति हों, जो जवाहरलाल जैसी अंग्रेजी लिख सकते हों।" "सोवियट रशा", "ए फादर्स लेटर टु हिज डाटर" (पुत्रीके नाम पिताके पत्र) "ग्लिम्पसेज़ आफ वर्ल्ड हिस्ट्री" (विश्व इतिहासकी झलक) "मेरी कहानी" आदि पुस्तकोंमें एक महान् लेखक छिपा हुआ है।

जवाहरलाल एक जन्म-जात नेता हैं। स्नेह और आदर तो वहुतोंके व्यक्तित्वमें छिपे रहते हैं, लेकिन जो स्फूर्ति जवाहरलालके व्यक्तित्वमें है, वह दूसरी जगह कहाँ ? उनका व्यक्तित्व जैसे यह घोपणा करता रहता है—'एक मिनटके लिए रुको नहीं, रुके और खड्ढेमें जा गिरे, आगे वढ़ते चलो, खतरोंको हँसकर झेलते चलो।'

जवाहरलाल अपने वारेमें बहुत संकोचशील हैं। 'मेरी कहानी' में अपने सम्वन्धमें उन्होंने जो कुछ कहा है, वह तो उनकी कहानी का एक छोटा हिस्सा भी नहीं। जो कुछ ये कह चुके हैं, उसके वाद शायद और कुछ कह भी नहीं सकेंगे।

भारतीय चित्र-कलासे इन्हें प्रेम है, भारतीय वस्तु-कलाके भी ये प्रशंसक हैं, लेकिन भारतीय संगीत इन्हें रुचिकर नहीं लगता।

उनके भीतर स्फूर्तिका जो प्रदीप जलता है, उसकी झलक कभी-कभी उनके विषादभरे चेहरे पर मुस्कराहटके रूपमें आ जाती है।

बच्चोंके साथ उन्हीं जैसा बनकर हँसने-खेलनेमें जवाहरलालको बहुत आनन्द आता है। कल-कल जलकी धारा उनके हृदयमें प्रसन्नताकी धारा बहा देती है। पहाड़ और ग्लेशियर उनके प्रिय प्राकृतिक दृश्य हैं। छिपकिली और चमगादड़के सिवा इन्हें सभी जानवर अच्छे लगते हैं।

गाँधीजीकी तरह खाने-पीनेमें इनकी कोई विशेष पसन्दगी नहीं। बचपनमें ये मांसाहारी थे, लेकिन सन् १९२० ई० में गाँधीजीके प्रभावसे मांस खाना छोड़ दिया और तबसे करीब-करीब शाकाहारी हैं। कभी-कभी सिगरेट भी पी लेते हैं।

अंग्रेजी कविता इन्हें बहुत प्रिय है—इस ओर उनका अध्ययन भी गहरा है।

इनके परिचितोंकी संख्या अपरिमेय है, लेकिन इनके हार्दिक मित्र बहुत थोड़े हैं। अक्सर इन्हें अकेलापन बहुत अखरता है।

नीम-रज़ा लोगोंसे इन्हें चिढ़ है—या तो बिल्कुल इनकी ओर रहो या बिल्कुल अलग रहो। समझौता इनके सिद्धान्तमें शामिल नहीं।

अपने पिता, गाँधीजी और अपनी पत्नीके अतिरिक्त अपने ऊपर ये किसीका प्रभाव स्वीकार नहीं करते। प्रभावोंसे बच

निकलनेकी इनकी एक विशेषता है, हालाँकि दूसरों पर खुद इनका प्रभाव बहुत गहरा पड़ता है।

शोषण और निर्दयतासे इन्हें सख्त नफ़रत है। ईश्वर, धर्म और जनताकी भलाईके नामपर अपना घोसला तैयार करनेवाले लोगोंसे इन्हें घृणा है।

इनका स्वास्थ्य साधारणतः इतना अच्छा है कि जेलमें इन्हें कभी अनिद्रा नहीं हुई। इन्होंने अपने कुछ सपनोंकी चर्चा की है। पृथ्वीके ऊपर खुले आसमानमें उड़नेका सपना ये अक्सर देखते हैं। एक बार इन्होंने सपनेमें देखा कि इनका गला घोंटा जा रहा है।

मजमेमें घुले-मिले रहने पर भी ये उसमें अपनेको खो जाने नहीं देते। मजमेमें रहकर भी ये उसका अंग नहीं बन जाते।

मज़हबसे—खासकर संगठित मज़हब-परस्तीसे इन्हें कोई सहानुभूति नहीं। इनकी चले तो ये उसे नेस्तो-नाबूद ही कर डालें।

—श्री नवकुमार एम० ए०।

मौलाना अबुलक़लाम आज़ाद

बीसवीं सदीकी राजनीतिक दुनियाके लिए मौलाना अबुलक़लाम आज़ाद एक मनोवैज्ञानिक विरोधाभास हैं, लेकिन उनके विरोधाभासमें न गाँधीकी रहस्यमयता है और न 'मिकाडो' की ईश्वरीय सत्ताका प्रभाव। उनका जीवन एक खुला हुआ पृष्ठ है, जिसमें आप पायेंगे कि एक ओर इस्लामके आध्यात्मिक तत्वोंका गहरा अनुशीलन चल रहा है और दूसरी ओर आज़ादी और रोटीके सवाल की 'बुनियादी ईंटें' गिनी जा रही हैं। एक ओर उनके दिलमें मज़हब और ईमानकी गंगा मौजें ले रही है और दूसरी ओर उनके दिमागमें पैंतीस करोड़ हिन्दुस्तानियोंकी 'रोटी' 'रोटी' की चिल्लाहट एक बेचैनी पैदा कर रही है। जो सख्स इन दो मुख़तलिफ चीजोंकी एक हैरत-अंगेज मिलावट है, वह है मौलाना अबुलक़लाम आज़ाद—हमारा राष्ट्रपति !

१८८८ में मुस्लिम मज़हब और इस्लामी तहज़ीबके केन्द्र मक्कामें इनका जन्म हुआ था। बचपन अरबकी आबोहवामें बीता और तालीम पाई मिस्रमें कैरोकी अल अज़हर यूनिवर्सिटीमें। पन्द्रह सालकी उम्रमें ही फारसी, अरबी और मज़हबी फिलासफ़ीमें इन्होंने ऐसी काबलियत हासिल कर ली जैसी कदीम मदरसोंमें २०-२५

सालोंमें भी हासिल होना मुश्किल होता है। इनके पिता मौलाना खैरुल उद्दीन साहब एक बहुत बड़े आलिम और सूफी थे। १८५७ के गदरके बाद वे अरब, ईराक़, टर्की, मिस्र और स्याम वगैरह मुल्कों की सैरको चले गये थे। वहाँसे लौट कर वे कलकत्तेमें बस गये। उनके मुरीद और मौतक़द बम्बई, काठियावाड़, कच्छ, गुजरात, कलकत्ता, लंका, जावा और इस्लामी मुल्कोंमें फैले हुए थे। जब मौलाना अबुलक़लाम आज़ाद सयाने हुए, इनकी काबलियतकी रोशनी इन तमाम जगहोंमें फैल गई और कुछ ही दिनोंमें तमाम मुस्लिम दुनियामें इनकी शोहरत होने लगी। इन्होंने कुरानका जो भाष्य (Commentary) लिखा, उसने इनकी शोहरतमें चार चाँद लगा दिये। अरब, फारस, मिस्र और ईरानके उलेमाओंने भी इनकी काबलियतका लोहा माना और इनकी गिनती एशियाके इने-गिने विद्वानोंमें होनी लगी। अपने इस भाष्यका एक संस्करण इन्होंने जिस व्यक्तिको समर्पित किया है, उससे ही इस्लामी दुनियामें इनकी इज्जत और शोहरतका अन्दाजा लग जाता है। समर्पणमें यह लिखते हैं—"शामका वक्त था। मैं मस्जिदसे नमाज़ पढ़ कर वापस लौट रहा था। अँधेरेमें लगा, जैसे कोई सख्स मेरा पीछा कर रहा है। मैं रुक गया। मेरे पीछे एक अधेड़ आदमी आकर खड़ा हो गया। उसकी शक्ल हिन्दुस्तानी-जैसी न थी और न उसके बदन पर हिन्दुस्तानी लिबास ही था। उसके चेहरेसे थका-वट और परेशानी झलक रही थी; पाँव भी धूलसे भरे थे। उसे चुप देखकर मैंने पूछा—'भई, मुझसे कोई काम है?'

'मेरा काम अब पूरा हो गया'—उसने एक गहरी साँस लेते हुए कहा।

"'मैं नहीं समझा, तुम्हारा क्या मतलब है?'—मैंने कहा।

"'मैं फ़ारसका रहनेवाला हूं। अर्सा हुआ, अपने देशमें मैंने आपकी लिखी हुई कुरान की..........देखी थी। उसके बाद ही मेरे दिलमें आपसे मिलनेकी तमन्ना उठ खड़ी हुई और मैं इस मुल्कके लिए चल पड़ा। मैं गरीब आदमी ठहरा, मेरे पास इतने रुपये कहां कि यहाँ तक गाड़ी वगैरहमें सफर करता। जब तक पासमें पैसे रहे, गाड़ीसे सफर किया। पैसे चुक जानेके बाद पैदल चलने लगा। आपकी तलाशमें कितने ही शहरोंकी खाक छानी, क्योंकि आप कभी यहाँ, कभी वहाँ रहा करते हैं। आज खुश-किस्मतीसे आप मिल गये और मेरी तमन्ना पूरी हुई।'—वह एक ही साँसमें यह सब कह गया।

"मैं उसकी कहानी सुन कर दंग रह गया। उसकी बेबसी देख कर गला भर आया। मैंने पूछा—'तुम्हारे पास तो पैसे नहीं होंगे, फिर अपने मुल्कको लौटोगे कैसे?'

"बाबूजी, मेरी ज़िन्दगीकी सबसे बड़ी तमन्ना आज पूरी हो गई। इसीको खुशीमें अब मैं रास्तेकी तकलीफोंमें भी खुश रहूंगा और अपने वतनको पहुँच जाऊँगा।"

"मेरी आँखें भर आईं और मैंने उसे कुछ रुपये देना चाहा। उसने बड़ी आज़िज़ीसे रुपये लेना नामंजूर कर दिया और एक ओर

को चल दिया। मैं उसका नाम भी न पूछ सका और वह अंधेरेमें गायब हो गया।

"मेरी यह किताब उसी गुमनाम सख्सको समर्पित है।"

इसकी एक घटनासे इस्लामकी मज़हबी दुनियामें मौलाना साहबकी जो कदर है, उसका पता चल जाता है। यों तो मौलाना साहबकी तालीम बड़े-बड़े उलेमाओंकी देख-रेखमें हुई ही थी ; लेकिन देश-देशकी सैरसे इन्हें दुनियाकी नई रोशनी देखनेका भी मौका मिला। इन्होंने महसूस किया कि नई तालीम और नई अदबने एक नई दुनिया पैदा कर दी है। यूरोपके विज्ञान और राजनीतिकी ओर भी इनका झुकाव हुआ और पूरब और पच्छिम, दोनोंके ज्ञान-विज्ञान की ओर इनकी रुझान बढ़ी। नतीजा यह हुआ कि १५ सालकी उम्रमें ही इन्होंने कलकत्तेसे एक माहवार अखबार बड़ी शानके साथ निकालना शुरू किया। आगे चल कर इनके सियासी खयालातमें भी इन्कलाब आया। इन्होंने देखा कि हिन्दुस्तानकी मुसलमान क़ौम मुल्ककी आज़ादीमें कोई हिस्सा नहीं ले रही है, बल्कि ज़ो थोड़ेसे मुसलमान कांग्रेसके साथ हैं, उन्हें भी यह क़ौम नफरतकी नज़रसे देखती है। सर सैयद अहमदकी बतलाई हुई राहसे एक कदम भी आगे बढ़ना मुसलमानों के लिए मुश्कल है। वे यह समझते हैं कि दुश्मन अंग्रेज नहीं, बल्कि हिन्दू हैं और इसी खयालके बिना पर उन्होंने मुस्लिम लीग नामक संस्था भी कायम कर ली है।

इन खयालोंके आते ही मौलाना साहबकी रगोंमें इन्कलाब और

हुब्बे-वतनकी आग भड़क उठी। इन्होंने १९१२ में 'अल-हिलाल' नामक अखबार निकाला और इस खयालका प्रचार करने लगे कि मुसलमानोंकी राहत हिन्दुओंके साथ मिल कर अंग्रेजोंको हटा कर मुल्ककी आज़ादी हासिल करनेमें है, न कि उन्हींके साथ वैर बाँधने में। अपने अखबारके जरिये इन्होंने मुसलमानोंके अन्दर आज़ादी के खयालात भरने शुरू किये और कुछ ही दिनोंमें आपकी आवाज़ सारे मुल्कमें बुलन्द होने लगी। साथ ही उर्दू अखबार-नवीसी और उर्दू ज़बानकी एक ऐसा मिसाल लोगोंके सामने आयी कि वे दंग हो गये। इनकी जुबान और तर्जे-तहरीर दोनों लामिसाल थे और कुछ ही दिनोंमें इनकी जुबानकी नकलके कितने लेखक आये। फिर तो 'आज़ाद-स्कूल' उर्दू जुबानका एक अलग स्कूल कायम हो गया।

इधर इनके नये खयालातसे कट्टर मुसलमानोंका माथा ठनका और उन्होंने इनकी मुखालफ़त करनी शुरू करदी। उन्हीं दिनों मौलाना मुहम्मद अली साहबने कलकत्तेसे 'कामरेड' नामक अखबार निकाला और उसमें मुस्लिम लीगकी वकालत शुरू की। 'अल-हिलाल' और 'कामरेड' में अक्सर नोक-झोंक हो जाया करती थी, लेकिन आज़ाद साहबकी आवाज़ और भी बुलन्द होती गई और समझदार मुसलमानों पर बिजलीकी तरह असर करती रही। इसका नतीजा यह हुआ कि १९१३ में मुस्लिम लीगको अपने मक़-सद बदलने पड़े और सरकारसे 'डोमिनियन स्टेटस' की माँगको उसमें जगह देनी पड़ी।

जब १९१४ की यूरोपीय जंग छिड़ी, तो आज़ाद साहब 'अल-हिलाल' में अपने आज़ाद खयालात ज़ाहिर करने लगे। लेकिन सरकार भला इसे कैसे बर्दास्त करती ? उस समयके अंग्रेजी अखबारोंने इन पर शेरकी तरह गुर्राना शुरू किया और 'हाउस आव कामन्स' में भी 'अल-हिलाल' के मुत्तलिक सवाल पूछे गये। आखिरकार हुआ वही, जो ऐसी हालतमें होना जरूरी था। अखबारकी जमानत जब्त कर ली गई और दस हज़ारकी एक नई जमानत माँगी गई। नतीजा यह हुआ कि 'अल-हिलाल' बन्द हो गया।

लेकिन इन्होंने तुरत ही 'अल वलाग' नामसे एक दूसरा अखबार निकालना शुरू कर दिया। इस पर झुँझला कर सरकारने बिहार और बंगालके अलावा और किसी सूबेमें इनके आने-जाने पर रोक लगा दी। १९१६ में इन्हें बंगालसे भी जलावतन कर दिया गया। तब वे राँची चले आये, लेकिन चार महीने बाद इन्हें राँची में ही नजरबन्द कर दिया गया। मौलाना मजहरुल हक़ साहब ने जब सरकारसे इनकी नजरबन्दीकी वजह तलब की तब कहा गया कि बंगालके क्रान्तिकारी दलसे इनके ताअल्लुकात हैं, लेकिन नजरबन्दीकी हालतमें भी आपके फैलाये हुए ख़यालात हिन्दुस्तानके मुसलमानोंमें आगकी लपटकी तरह फैलते गये और १९१८ में मुसलमानों की एक बड़ी तादाद कांग्रेसमें शामिल हो गई। मुस्लिम लीगके प्लैटफार्मसे भी आज़ाद ख़यालातके तराने गाये जाने लगे।

१९२० में इन्हें रिहाई मिली और बाहर आते ही इन्होंने देखा कि सारा मुल्क आज़ादीके नशेमें चूर होकर सत्याग्रहके लिये बेचैन

है। २२ मार्चको दिल्लीमें इस सत्याग्रहकी बाबत राय-मशविरा करनेके लिये नेताओंका जो मजमा हुआ, उसमें चार ही नेता शामिल हुए थे—गाँधीजी, लाला लाजपत राय, हकीम अजमल खाँ और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद।

१६२१ में 'प्रिंस आफ वेल्स' स्वागतके बायकाट सिलसिलेमें बंगाल सरकारने दमनका जो रवैया अख्तियार किया, उसकी चोट इनपर भी पड़ी और देशबन्धु चितरञ्जन दासके साथ इन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। इस बार इन्हें एक सालकी सजा हुई। १६२३ में जेलसे छूटनेके बाद इन्होंने देखा कि कांग्रेसके अन्दर दो दल हो गये हैं—एक परिवर्तनवादी और दूसरे अपरिवर्तनवादी। इन्होंने दोनों दलोंमें समझौता करानेकी कोशिश की और अन्तमें इलाहाबाद कांग्रेसकी महासमितिने इनके निर्णय को मान लिया। उसी साल सारे मुल्कने मुत्तफिकराय होकर इन्हींको कांग्रेसके दिल्लीवाले विशेष अधिवेशन का प्रेसिडेण्ट बनाया और इनकी सदारत में कांग्रेसका जलसा बड़ी धूमधामसे हुआ। उस मौके पर दी गई इनकी तकरीर कांग्रेसकी सदारती तकरीरोंमें अपनी एक खास जगह रखती है। शुद्धि और संगठन, तंजीम और तबलीग, दोनोंको इन्होंने मुल्कमें गन्दगी खुराफात फैलाने वाली चीज़ कहा था।

१६२४ में आज़ाद साहब दिल्ली चले गये और वहीं अपना प्रेस और लाइब्रेरी भी लेते गये, लेकिन कुछ साल बाद फिर कलकत्ते वापस आ गये और वहीं रहने लगे। इस बीचमें हिन्दू-मुस्लिम समझौता, नेहरू-रिपोर्ट वगैरह जितनी भी कार्रवाइयाँ हुई, उनमें

बराबर भाग लेते रहे। १९२० से ही ये लगातार कांग्रेस-महासमिति के सदस्य रहे हैं।

१९३० में जब महात्मा गाँधीने नमक-कानून तोड़नेकी आवाज़ उठाई, तो मौलाना साहब हमारे हिन्दू नेताओंके कन्धेसे कन्धा लगाकर हमारी रहनुमाईके लिए सबसे आगे दीख पड़े। १९३० में कांग्रेसकी कार्य-समिति गैर कानूनी करार दे दी गई। ये उसके सदस्य थे, इसलिये इन्हें कैद कर लिया गया।

सन् १९३१-३२ में जब सत्याग्रह जोरों पर चल रहा था, तो इनके ही कन्धोंपर कांग्रेसकी स्थानापन्न सदारतका भार आ पड़ा था। उस पदसे इन्होंने सत्याग्रहको बड़ी खूबीसे चलाया था। इस सिलसिलेमें भी इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था।

जबसे कांग्रेसने वैधानिक मार्ग पकड़ा है, तबसे मौलाना साहब कांग्रेस 'हाई-कमाण्ड' के सर्वेसर्वा व्यक्तियोंमें हैं। कांग्रेस पार्ल-मेंटरी बोर्डके तीन मेम्बरोंमें ये भी हैं। इस हैसियतसे मध्यप्रान्तमें मन्त्रिमण्डलके झगड़ेको निपटाने, उड़ीसामें स्थानापन्न गवर्नरकी नियुक्ति पर वैधानिक संकटकी स्थितिका सामना करने, सिन्धमें मन्त्रिमण्डलकी उलझनोंको सुलझाने, बिहारके जमीन्दारों और मन्त्रि-मण्डलके मतभेदोंको मिटाने, आसाममें कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल कायम करने आदिमें इनका प्रमुख हाथ रहा है। बिहार सरकारने हिन्दुस्तानी जुबानके मसलेको हल करनेके लिए इनकी सदारतमें 'हिन्दुस्तानी कमिटी' कायम की है।

अभी हालमें इन्हींकी कोशिशोंसे पञ्जाबकी कांग्रेसमें जो दलबन्दी थी, वह दूर हो गयी है।

इस समय कांग्रेसके ऊपर एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी आ पड़ी है। घरके चिरागसे ही घरमें आग लगा चाहती है। एक ओर मुस्लिम लीग एलान कर रही है—कांग्रेस हिन्दुओंकी संस्था है, वह हिन्दू-राज्य कायम करना चाहती है, दूसरी ओर हिन्दू-महासभा गला फाड़-फाड़ कर यह कह रही है—कांग्रेस हिन्दुओंके अधिकारोंकी कुर्बानी देकर मुसलमानोंको खुश रखनेकी कोशिश करती है, चुनांचे वह हमारे गले पर छुरी फेरना चाहती है। अंग्रेजी सरकार बन्दर-बिल्लीके तमाशेको देख-देख कर खुश हो रही है। ऐसे अवसर सारे हिन्दुस्तानमें मौलाना सहाबको अपना सरदार चुनकर ब्रिटिश सरकारको यह गहरी चुनौती दी है—हिन्दुस्तान के राजनीतिक मसलेको साम्प्रदायिकता की ओटमें छिपा कर हमें उल्लू नहीं बना सकते।

मौलाना साहब निशस्त-बर्खास्त में पक्के 'एरिस्टोक्रैट' हैं, लेकिन उनके दिल की सादगी और बातचीत की मुलायमियत, उस 'एरिस्टोक्रैसी' की चादर पर झालर के हाशिया जैसी लगती है।

मौलाना साहब 'इमामुलहिन्द'—मुसलमानोंके धर्म-गुरु हैं और और अब भी मिस्र, टर्की, ईराक और अरब तकमें इनके मुरीद फैले हुए हैं। कलकत्ते में ईद की आम नमाज़ मौलाना साहब ही पढ़ाया करते थे।

मौलाना साहब ही पहले मुसलमान हैं, जिन्होंने गाँधीजीके भी पहले मुल्ककी आज़ादीकी आवाज़ बुलन्द की थी।

शोहरत से दूर भागना मौलाना साहब की आदत है, लेकिन वह दौड़ कर इन्हें पकड़ लेती है और फिर ये भाग नहीं सकते।

बीसवीं सदीमें मौलाना साहब इस्लामकी सबसे बड़ी देन हैं। सत्य और अहिंसाके तो वे अनन्य पुजारी हैं ही। इसी-लिए तो वे एक मनोवैज्ञानिक विरोधाभास हैं।

एक जुमलेमें मौलाना साहब हिन्दुत्व और इस्लामके अजीब सम्मिश्रण और सादगी, शराफ़त और बुजुर्गीके आदर्श हैं।

—श्री नवकुमार एम० ए०

डा० राजेन्द्र प्रसाद्

"उनकी दमे से पीड़ित प्रत्येक सांस राष्ट्रके हित के लिए और जनता के लिए उत्सर्ग है। उनकी दुर्बल भुजाओं में वह शक्ति है, जो वर्षों से संसार की सबसे शक्तिशाली शक्ति से लोहा ले रही है। उनके सूखे चेहरे पर उच्च चरित्र की छाप है और उस दुर्बल शरीर में निवास करनेवाली आत्मा ऐसी महान् है, जिस पर कोई भी देश गर्व कर सकता है।"

—स्व० ब्रजमोहन वर्मा।

सन् १९१७ की एक रात। नौ बजे बादका समय। बिहार प्रान्तके मोतिहारी नामक देहाती क़स्बेकी धुँधली सड़क पर दो लदे-फदे देहाती पैदल जा रहे थे।

एकका क़द साधारण, शरीर दुबला, ललाट चौड़ा, बाल छोटे, आँखें चमकदार, कान बड़े-बड़े और बाहरको उभड़े हुए, मूछें छोटी छोटी और कटी हुई, ठोढ़ी छोटी और भुजाएँ लम्बी थीं; बदन पर गाढ़े की मोटी धोती और गाढ़े की ही देहाती चौबन्दी मिर्जई थी।

दूसरेका क़द लम्बा, माथा प्रशस्त, भौंहें घनी, आँखें गढ़ेमें घुसी हुई, नाक लम्बी, गाल चपटे और मूछें बड़ी-बड़ी; किन्तु

बिखरी हुई और अस्त-व्यस्त थीं। पोशाकमें उसकी कमरमें भी पहले देहातीके समान ही मोटी धोती थी; परन्तु बदन पर मिर्जईकी जगह गाढ़ेका कुर्ता था।

दोनोंके सिर पर गठरी-मुटरी और बिस्तर-बर्तन लदे थे। दूरसे देखनेवाला उन्हें साधारण कुली ही समझता; परन्तु पास से देखने पर उनके कपड़ों की सफाई बताती थी कि वे भाड़ेके कुली न होकर निम्न श्रेणीके गरीब देहाती हैं, जो कुली या सवारीका खर्च बर्दाश्त न कर सकनेके कारण खुद ही अपना माल-असबाब ढोकर स्टेशन या कहीं और ले जा रहे हैं। इस दृश्यमें कोई विशेषता न थी; क्योंकि ग़रीब हिन्दुस्तानमें सभी जगह इस तरहके लदे-फदे देहाती प्रतिदिन आते-जाते दीख पड़ते हैं।

परन्तु मोतिहारीकी उस रात में, देखनेवालोंने स्वप्नमें भी यह कल्पना न की होगी कि ये दोनों देहातीनुमा व्यक्ति भारतके आधुनिक इतिहास के निर्माता होंगे। उन्हें देखकर किसे यह ख़याल हो सकता था कि इन गठरी-मुटरियोंके नीचे संसार की दो पवित्रम आत्माएं चल रही हैं? यह तो दूर की बात थी, उस समय किसीने यह सन्देह भी न किया होगा कि इन दोनों में एक बैरिस्टर और दूसरा वकील भी हो सकता है? उस समय कौन कह सकता था कि इन दोनों कुलियों में एक की गणना संसार के महान् व्यक्तियोंमें की जायगी, तो दूसरा आज़ादी की जंग का 'पेशवा' बन कर मुल्ककी रहनुमाई करेगा।

मोतिहारीकी उस धुँधली रात में लदे-फदे चलनेवाले इन व्यक्तियोंमें एकका नाम है मोहनदास कर्मचन्द गाँधी और दूसरे का राजेन्द्र प्रसाद।

+ + + +

सन १९१७ में चम्पारन में निलहे गोरोंके खिलाफ़ सत्याग्रहकी लड़ाई छिड़ी हुई थी। महात्मा गाँधीके साथ राजेन्द्र बाबू मोतिहारी के मोर्चे पर डटे थे। एक दिन स्थान बदलनेका निश्चय हुआ, मगर कामके मारे नौ बजे रात तक फुर्सत ही न मिली। रात-को नौ बजेके बाद देहातमें सामान ढोनेके लिए सवारी या मज़दूर मिलना मुश्किल था। फिर क्या हो? महात्माजीके साथ राजेन्द्र बाबू फौरन अपना सामान सिर पर लाद कर चल खड़े हुए। उसी समय मकान बदला गया। नये मकानमें पहुंच कर अपने हाथों झाड़ू लगाई गई, सब सामान ठीक से रखा गया और तब कहीं जाकर दम ली। यह उस समयकी बात है, जब राजेन्द्र बाबू बिहारके सबसे नामी वकील थे और हज़ारों रुपये पैदा करते थे।

यह एक छोटी और मामूली घटना है; परन्तु यह प्रकट करती है कि 'हमारा पेशवा' केवल दूसरों पर हुक्म चलानेवाला सेनापति ही नहीं, वरन् स्वयं भी एक मुस्तैद सिपाही है। वह पैसे के ज़ोम या बड़प्पन की शान में अकड़ने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि सादगीकी जिन्दा मूरत है। वह आरामकुर्सी पर बैठ कर निठल्ली बातें बघारने वाला नेता नहीं है, बल्कि ऐसा कर्मठ व्यक्ति है, जो

बोझा ढोने और झाड़ू लगाने से लेकर ३५,००,००,००० प्राणियों के राष्ट्रके संचालन का काम तक एक-ही-सी तत्परतासे कर सकता है ।

* * * *

सन् १८८३ में भारतके कुछ सपूत देशकी छिन्न-भिन्न शक्तियोंको एकत्रित करनेकी कोशिश कर रहे थे । भारतीय राष्ट्रकी बुनियाद रखनेके लिये राष्ट्रीय कांग्रेसको जन्म देनेकी तैयारियाँ हो रही थीं । इसके लिये एक 'नेशनल कन्वेनशन'की योजना हुई थी । जिस समय देश अपनी महान् राष्ट्रीय संस्था—कांग्रेसकी प्रसव-वेदनामें पीड़ित था, उसी समय बिहारके जीरादेई (सारन जिला) नामक एक छोटे गाँवमें, ३ दिसम्बर १८८३ को एक शिशुका जन्म हुआ । वही शिशु आज हमारा पेशवा है ।

राजेन्द्र बाबूकी शिक्षा छपरा जिला स्कूलमें हुई और उन्होंने १९०२ में कलकत्ता यूनिवर्सिटीकी एन्ट्रेन्सकी परीक्षा पास की । उस समय कलकत्ता यूनिवर्सिटीके अन्तर्गत केवल बंगाल ही नहीं, वरन् बिहार, उड़ीसा, आसाम और ब्रह्मा आदि भी थे । इस परीक्षा में राजेन्द्रबाबूने यूनिवर्सिटीमें सर्वप्रथम स्थान पाया था । यही सर्वप्रथम बिहारी छात्र थे, जिन्होंने यह सम्मान प्राप्त किया ।

उस वर्ष कांग्रेसका अधिवेशन लाहौरमें हुआ था; स्वर्गीय चन्द्रावरकर उसके सभापति थे, जिस समय 'चन्द्रावरकर' महाशय कांग्रेसके सभापतिका कार्य-सम्पादन कर रहे थे, उसी समय उन्हें सरकारका एक पत्र मिला था, जिसमें उन्हें हाईकोर्टका जज बनाये

जानेकी सूचना थी। उस समय भारतकी अंग्रेजी सरकारमें भारतीयोंके लिये सबसे बड़े सम्मानका पद हाईकोर्टकी जजी ही थी।

राजेन्द्र बाबूके एन्ट्रेन्सकी परीक्षामें सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करनेके उपलक्षमें पटनेके 'हिन्दोस्तान रिव्यू' ने लिखा था :—

"नवयुवक राजेन्द्र सब प्रकारसे प्रतिभाशाली विद्यार्थी है। हमें आशा है कि एन्ट्रेन्सकी परीक्षामें उन्होंने जो स्थान प्राप्त किया है, उसे वे अपने यूनिवर्सिटी-जीवनमें बनाये रखेंगे। ईश्वर जाने, इस नवयुवकके भविष्यमें क्या है ? लेकिन यदि उसका स्वास्थ्य ठीक रहा, तो कोई भी पद, जो भारतीयोंके लिये खुला है, उसकी महत्वाकांक्षाके बाहर नहीं हैं। हम आशा करते हैं कि आगे चल कर अपने प्रान्तके हाईकोर्टके न्यायाधीशका आसन सुशोभित करेगा और उसे भी न्यायधीशका नियुक्ति-पत्र उसी प्रकार प्राप्त होगा, जैसे मि० जस्टिस चन्द्रावरकरको लाहौरकी कांग्रेसका सभापतित्व करते हुए प्राप्त हुआ था।"

'हिन्दुस्तान रिव्यू' की यह भविष्यवाणी बत्तीस वर्ष बाद पूर्ण हुई। जिस बिहारी विद्यार्थीने सन् १९०२ में कलकत्ता-यूनिवर्सिटीकी एन्ट्रेन्सकी परीक्षामें प्रमुख स्थान प्राप्त किया था, वही आज राष्ट्रीय रंगमंचका प्रमुख सूत्रधार है। रही हाईकोर्टकी जजीकी बात, सो आज राजेन्द्र बाबूको सारे देशसे—अनुगामियों और विरोधियों, दोनों प्रकारके लोगोंसे—जो सम्मान और भक्ति प्राप्त है, वह विदेशियों द्वारा कंजूसीसे दी हुई हाईकोर्टकी जजीसे कहीं ज्यादा ऊँची है।

इसके वाद राजेन्द्र वावूने एफ० ए० वी० ए०, एम० ए० और बी० एल० की परीक्षाएँ पास कीं। पहली दोनों परीक्षाओंमें भी वे प्रथम हुए थे। वी० ए० पास करनेके वाद उन्होंने एक वर्ष तक मुजफ्फरपुरके ग्रीयर कालेजमें अध्यापन-कार्य किया। इसके वाद वे कलकत्तेमें वकालत करने लगे।

नवयुवक राजेन्द्रप्रसाद अपने विद्यार्थी-जीवनसे ही सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेने लगे थे। सन् १९०२ में ही उन्होंने कलकत्तेमें 'बिहारी क्लब' की स्थापना की। इसी संस्थाने आगे चल कर विहारी विद्यार्थी-कान्फरेन्सका आयोजन किया था। आज कल देशके प्रत्येक प्रान्तमें विद्यार्थियोंकी कान्फरेन्सें हुआ करती हैं। इन सब कान्फरेन्सोंके आदि पिता वावू राजेन्द्रप्रसाद ही हैं। सन् १९०५–६ के वंगभंग और स्वदेशी आन्दोलनने भी राजेन्द्र वावू पर गहरा प्रभाव डाला और उसी समयसे उन्होंने स्वदेशीका जो व्रत लिया, वह आज भी कायम है।

सन् १९१० में स्वर्गीय गोखलेको अपनी 'सर्वेण्ट आफ इंडिया सोसाइटी'के लिये कुछ त्यागी कार्यकर्त्ताओंकी आवश्यकता थी। विहारमें उनकी दृष्टि नवयुवक राजेन्द्रप्रसाद पर पड़ी और उन्होंने राजेन्द्र वावूको वातचीत करनेके लिये निमन्त्रित किया। स्वर्गीय गोखलेकी वातचीत तथा देश-सेवाके भावोंका राजेन्द्र वावू पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे 'सर्वेण्ट आफ इण्डिया' सोसाइटीमें सम्मिलित होनेके लिये तैयार हो गये। परन्तु अपने वड़े भाई स्वर्गीय महेन्द्र प्रसादकी—जिनका वे पिताके समान आदर करते थे, अनुमति न

मिलनेके कारण वे सर्वेण्ट आफ इंडिया सोसाइटीमें सम्मिलित न हो सके। उस समय उन्होंने अपने भाईको जो पत्र लिखा था, वह उनके उच्च चरित्रका दर्पण है :—

"मेरे हृदयमें एक उच्च और महान् आदर्शका आह्वान सुनाई पड़ता है। आपको किसी प्रकारकी कठिनाईमें डालना मेरे लिये कृतघ्नताकी बात होगी। फिर भी मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आप भारतके तीस करोड़ प्राणियोंके हितके लिये एक त्याग करें। मि० गोखलेकी सोसाइटीमें सम्मिलित होनेमें मुझे कोई त्याग नहीं करना पड़ेगा, क्योंकि चाहे अच्छी हो या बुरी, मुझे ऐसी शिक्षा मिली है, जिससे मैं अपनेको सब तरहकी परिस्थितियोंके अनुकूल बना सकता हूँ। मेरा रहन-सहन भी ऐसा है कि उसमें किसी विशेष आरामकी जरूरत नहीं होती। सोसाइटीसे मुझे जो कुछ मिलेगा, वह मेरे लिये काफी होगा। परन्तु मैं यह नहीं कहूँगा कि इसमें आपको भी त्याग न करना पड़ेगा। आपने मेरे ऊपर बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी हैं। मेरे इस कार्यसे वे एक क्षणमें ही चूर-चूर हो जायँगी। किन्तु इस क्षणभंगुर संसारमें सभी चीजें—धन, वैभव सम्मान—शीघ्र ही उड़ जाती हैं। हम जितने ही धनी होते जाते हैं, उतनी ही हमारी चाह बढ़ती जाती है। यद्यपि कुछ लोग समझते हैं कि धनसे उन्हें सुख-सन्तोष मिलता है; लेकिन जानने वाले जानते हैं कि सुख अपने भीतरसे मिला करता है, न कि बाहरसे। एक गरीब आदमी अपने दो-चार रुपयोंमें ही उससे अधिक संतुष्ट हो सकता है, जितना एक धनी लाखों रुपयोंमें नहीं होता। इस-

लिये हमें गरीबीसे घृणा न करनी चाहिये। संसारके महान् व्यक्ति अत्यधिक गरीब, अत्यधिक पीड़ित और अत्यधिक तिरस्कृत होते आये हैं। अत्याचार और घृणा करने वाले तो सदाके लिये धूलमें मिल गये, उनका नाम भी नहीं सुनाई देता, लेकिन अत्याचार पीड़ित और घृणा किये जाने वाले व्यक्ति करोड़ों आदमियोंके हृदय में जीवित हैं।"

इससे प्रत्यक्ष है कि यौवनके तूफानी दिनोंमें, जब अधिकांश लोग सुख और आनन्दकी आकांक्षाएँ रखते हैं, राजेन्द्र बाबूके विचार कितने उच्च और आदेशपूर्ण हो चुके थे।

वकालतमें राजेन्द्र बाबूने शीघ्र ही अपना सिक्का जमा लिया। पहले वे कलकत्तेमें वकालत करते रहे, फिर पटना हाईकोर्ट क़ायम होने पर पटना चले गये। यहाँ भी वे शीघ्र ही प्रमुख वकील बन गये और उन्हें हज़ारों रुपये मासिककी आय होने लगी। लेकिन इस आयका बहुत बड़ा हिस्सा परोपकारमें ही चला जाता था।

राजेन्द्र बाबू बड़े अच्छे शिक्षा-प्रचारक हैं। उन्होंने पटना यूनिवर्सिटीमें अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये थे। बादमें "सदाक़त-आश्रम" में उन्होंने अपने मौलिक विचारोंके अनुसार शिक्षा-पद्धति चलाई थी।

सन् १९१७ के चम्पारनके सफल सत्याग्रहमें राजेन्द्र बाबू महात्माजीके दाहिने हाथ थे। इस सत्याग्रहमें कई मास साथ-साथ काम करनेसे राजेन्द्र बाबू पर महात्माजीका स्थायी प्रभाव पड़ा और तबसे भारतकी इन दोनों विभूतियोंका जो घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हुआ,

वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया, यहां तक कि आज बहुतसे लोग राजेन्द्र बाबूको 'बिहारके गाँधी' के नामसे पुकारते हैं।

सन् १९१९ ई० के बादसे राजेन्द्र बाबूने अपनी हजारों रुपये मासिक आयकी वकालत पर लात मारकर राष्ट्रीय आन्दोलनमें जो भाग लिया है, वह देशभरमें विदित है। सत्याग्रह-आन्दोलनमें देशमें सबसे अव्वल नम्बर बम्बई प्रान्त का रहा, जहाँ स्वयं महात्माजी काम कर रहे थे, तो दूसरा नम्बर बिहारने पाया। बिहारकी इस सफलताका अधिकांश श्रेय राजेन्द्र बाबूको है।

राजेन्द्र बाबूका हालका सबसे महान् कार्य भूकम्प-पीड़ित बिहारको सहायता पहुंचाना है। इतने लम्बे-चौड़े रिलीफके कामका संगठन करना कोई हँसी-खेल नहीं है। फिर भी राजेन्द्र बाबूकी अध्यक्षतामें भूकम्पकी सेंट्रल रिलीफ कमिटीने जैसी तत्परता और लगनके साथ काम किया, उसकी प्रशंसा कांग्रेसके विरोधियों तकने भी मुक्तकण्ठसे की थी। यह राजेन्द्र बाबूके नामका जादू ही था, जिसपर देशने निस्संकोच होकर २८,००,००० रु० का फण्ड जमा कर दिया था। यदि वायसरायने अपना अलग फण्ड कायम न किया होता, तो यह निश्चय था कि राजेन्द्र बाबूका भूकम्प रिलीफ-फण्ड आसानीसे पचास-साठ लाख तक पहुँच जाता।

राजेन्द्र बाबूकी शक्ल-सूरतमें कोई विशेष आकर्षण नहीं है। आकर्षण तो दूर रहा, उलटे उनकी शक्ल-सूरत करुणोत्पादक जान पड़ेगी। कमजोर शरीर, गाँधी टोपीके नीचे सिरसे सटाकर कटे हुए छोटे-छोटे बाल, लम्बी नाक, बड़ी-बड़ी, किन्तु बिखरी हुई

बेतरतीब मूँछें, खद्दरका कुर्ता-धोती, दमेकी पुरानी बीमारीसे कुछ भर्राई-सी आवाज—ये सब चीजें उनके बाह्य रूपको एक प्रकारसे दयनीय बना देती हैं।

परन्तु उस खद्दरकी टोपीसे ढके हुए मस्तिष्कमें अनोखी बुद्धिमत्ता है। उन कोटरोंमें धँसी हुई आँखोंमें वह ज्योति है, जो देशके उज्ज्वल भविष्यको देख सकती है। उन बिखरी मूछोंके नीचे के ओठोंसे निकलनेवाली भर्राई-सी आवाज़में सचाईकी मिठास और जबर्दस्त दृढ़ता है। उनकी दमेसे पीड़ित प्रत्येक सांस राष्ट्रके हितके लिए और जनताके परोपकारके लिए उत्सर्ग है। उनकी दुर्बल भुजाओंमें वह शक्ति है, जो वर्षोंसे संसारकी सबसे शक्तिशाली शक्तिसे लोहा ले रही है। उनके सूखे चेहरे पर उच्च चरित्रकी छाप है और उस दुर्बल शरीरमें निवास करनेवाली आत्मा ऐसी महान् है, जिसपर कोई भी देश गर्व कर सकता है।

इन सबके साथ-साथ उनमें बच्चोंका-सा भोलापन, स्फटिक-सी पारदर्शी निष्कपटता, कुन्दन-सी खरी ईमानदारी तथा विरोधियोंके प्रति भी उदारता है और है अतुलनीय विनम्रता—वह विनम्रता जो कविके शब्दोंमें:—

× × × ×

"झुकाती है हमारी आजिज़ी सरकशकी गर्दनको।"

हाल ही एक अमेरिकन पत्रकारने हिन्दुस्तानकी राजनीतिक परिस्थितिकी आलोचना करते हुए लिखा था कि 'अगर सरदार पटेल कांग्रेस पार्लमेंटरी सब कमिटीके दाहिने हाथ हैं और

मौलाना आज़ाद उसके दिमाग, तो निस्सन्देह डा० राजेन्द्र प्रसाद उसका हृदय हैं।' उस अमेरिकन पत्रकारका यह कथन बावन तोले पावरत्ती सही है। राजेन्द्र बाबूका पिछले छः सालका समय बड़ा ही तूफानी रहा है। १६३४ में वे जेलमें ही थे कि उनके प्यारे प्रांत बिहार पर प्रलयकारी भूकम्पके रूपमें दैवी विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा। उस समय राजेन्द्र बाबू फौरन रिहा किये गये। स्वास्थ्य खराब था, फिर भी वे पीड़ित भाइयोंकी सेवा-सहायतामें प्राणपनसे जा जुटे। सहायता-कार्य जारी ही था कि राष्ट्रने कांग्रेसका ताज़ इनके मस्तक पर रख दिया। स्वास्थ्यकी गड़बड़ी, दमेके दौरे, भूकम्प-पीड़ितोंकी सेवापरता आदि अनेक कार्योंके बावजूद राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबूने अपने उस वर्षके राष्ट्रपतित्वकालको बड़ी आन, बान और शानसे निबाहा। उन्होंने राष्ट्रके कोने-कोनेमें तूफानी दौरा कर कांग्रेसका संदेश विशाल अट्टालिकाओंसे लेकर गरीबोंकी झोपड़ियों तक पहुंचानेकी जो परिपाटी कायम की, वह राष्ट्रीय कांग्रेसके इतिहासमें अभूतपूर्व और अनुकरणीय घटना है।

प्रथम राष्ट्रपतित्व-काल खत्म होते ही अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलनने आपको नागपुरवाले अधिवेशनका सभापति चुनकर अपने सम्मानकी वृद्धि की। सम्मेलनके सभापतिकी हैसियतसे दिया गया आपका भाषण हिन्दी-साहित्यकी कीमती चीजोंमें एक है। उसके कुछ ही महीने बाद इलाहाबाद यूनिवर्सिटीने राजेन्द्र बाबूकी कानूनी योग्यता और बहुमुखी प्रतिभासे कायल होकर इन्हें 'डाक्टर-आव-ला' (कानूनके पण्डित) की उपाधिसे

विभूषित किया और तबसे लोग आपको डा० राजेन्द्र प्रसादके नामसे सम्बोधित करते हैं।

सन् १९३७ ई० में कानपुरके मिलमालिकों और मजदूरोंके बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। मजदूरोंने व्यापक हड़ताल कर दी। उस समय युक्तप्रान्तमें कांग्रेसी सरकार थी। उसने मालिक-मजदूरों के झगड़ेके निपटारेके लिए जो जांच-कमिटी मोकर्रर की थी, उसके अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू ही बनाये गये और अस्वस्थावस्थामें भी इन्होंने उस जिम्मेदारीको बड़ी खूबी और निपुणताके साथ निबाहा था।

जैसा ऊपर लिखा गया है, राजेन्द्र बाबू राजनीतिक नहीं, एक साहित्याचार्य भी हैं। सरल, सुबोध और मुहावरेदार भाषा लिखनेमें आपको कमाल हासिल है। आपकी स्मरणशक्ति गज़ब ही है। आपको बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी बातोंकी याद भी हमेशा बनी रहती है। एक बार भी जिससे आपकी जान-पहचान हुई कि उसके सम्बन्धकी पूरी बातें गोया आपको कण्ठस्थ हो गईं।

१९३९ में त्रिपुरी कांग्रेसके बाद श्रीसुभाषचन्द्र बोसकी हरकतों से मुल्क परेशान हो रहा था और जब सुभाष बाबूने अ० भा० कांग्रेस कमिटीकी कलकत्तेकी बैठकमें पदत्याग कर दिया, उस तूफानी समयमें राजेन्द्र बाबूके हाथोंमें देशकी बागडोर दी गई और तबसे मार्च १९४० तक आपने राष्ट्रपतिके रूपमें जो काम किये हैं वे, राष्ट्रीय गौरवको बढ़ानेवाले हैं। राजेन्द्र बाबूको अगर एक शब्दमें सम्पूर्ण

संस्था कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं और इस कथनका प्रमाण है उनके इस समयके विविध रूप।

राजेन्द्र बाबू इस समय केवल राष्ट्रपति ही नहीं, बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमिटीके सभापति, रामगढ़ कांग्रेसके स्वागताध्यक्ष, बिहार मजदूर जांच-कमिटीके अध्यक्ष, बिहार हिन्दुस्तानी कमिटीके सदर और 'सर्चलाइट' नामक बिहारके एकमात्र अंग्रेजी राष्ट्रीय दैनिक पत्रके बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्सके चेयरमैन हैं और खूबी तो यह कि वे सारी जिम्मेदारियां बिना किसी दिक्कतके, साथ ही, बड़ी दिलचस्पीके साथ निबाहते जा रहे हैं।

—स्व० ब्रजमोहन वर्मा

सरदार वल्लभभाई पटेल

"········महात्माजीका संयम और उनका तप महान प्रयत्नोंकी सिद्धि है। वल्लभभाईका सन्यास एक दिन प्रातःकाल उठ कर किया हुआ, किन्तु सदैव टिकनेवाला, सिपाहीका प्रण है। महात्माजी, साधक, सुधारक और शिक्षक हैं।········वल्लभभाई न सुधारक हैं, न साधक हैं, न शिक्षक हैं। वह योद्धा हैं, सेनानी हैं, सिपहसालार हैं।" —श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी

प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार फ़िलिप गड्डेलाने ब्रिटिश पार्लमेंटके मंत्री ग्लैडस्टोनके सम्बन्धमें लिखा है—········"अपने विरोधियोंके प्रति वज्रसे भी कठोर, अपने समर्थकोंके लिए मोमसे भी मुलायम········अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके लिए वह ज्वालामुखीके समान था। अपने विरोधियोंके लिये अज्ञेय, दुर्भेद्य और अजेय था और जब कभी उन विरोधियोंको उसकी थाह पा लेनेकी कोई कड़ी हाथ लग जाती और उसके सहारे आगे बढ़ वे उसके ऊपर पहुंचनेकी चेष्टा करते, तो उन्हें लगता कि उस दुर्भेद्य, अजेय ज्वालामुखीसे गर्म गर्म धातुओंका लावा निकल कर चारों ओरसे उन्हें ढँकता चला जा रहा है।"

भारतीय कांग्रेसकी राजनीतिक पार्लमेंटमें सरदार पटेलका भी वही स्थान है। फर्क इतना ही है कि ग्लैडस्टोनमें

राजनीतित्व अधिक था, सेनापतित्व कम, लेकिन सरदार पटेलमें दोनों समान मात्रामें हैं। मौलाना शौकत अलीने तो ठीक ही कहा था—'वल्लभभाई वर्फसे ढका हुआ ज्वालामुखी है।'

जब तक कांग्रेस सत्याग्रहकी लड़ाई लड़ती रही, देशने सरदार पटेलको एक दुधर्ष सैनिकके रूपमें पाया—वैसा सैनिक, जिसकी वाणीमें आग थी, जिसके हृदयमें खतरेसे खिलवाड़ करनेकी तमन्ना और जो यह कहा करता था कि 'जो लोग आपत्तियोंको निमंत्रण दें, उनकी सहायताके लिए मैं सदा तैयार हूं।' लेकिन साथ ही, जब कांग्रेसने वैधानिक मार्गका अवलम्बन किया, तो देशने पाया कि हमारा वही सरदार, जिसने युद्धक्षेत्रमें हमारे झण्डेको कभी झुकने नहीं दिया, राजनीतिक शतरंजकी चालोंमें बड़े-बूढ़ोंको भी नाकों चने चबवा रहा है। राजनीतिकी पेचदार गुत्थियाँ हमारे आजके सरदारकी अंगुलियोंके स्पर्शसे खुलती हैं और फिर जब वह चाहता है, वे इस तरह जकड़ जाती हैं कि किसीके सुलझाये नहीं सुलझती। सैनिक सरदारकी कठोरता कांग्रेस-पार्लमेंटरी-बोर्डके सभापति सरदार पटेलमें भी मौजूद है। कांग्रेसके अन्दर सरदार पटेल नरम-दलके सर्वेसर्वा हैं और बकौल जॉन गुन्थर ('इन्साइड एशिया' में) ज़िम फ़ार्लेकी भांति वह पार्टीके संगठन और व्यवस्थामें कठोर हैं, एक बार जहाँ गाँधीजीने मार्ग निश्चित किया कि पटेल उस पर अन्धाधुन्ध चल पड़े, जैसा कि त्रिपुरीमें १६३६ में हुआ।"

सरदार पटेल एक व्यावहारिक व्यक्ति हैं, एक कठोर कर्मठ। उनके सामने अनिश्चितता और दुविधा टिक नहीं सकती। उनके

हाथ लड़नेके लिए खुजलाया करते हैं—वह हमेशा संघर्षशील-प्रवृत्ति—'फाइटिंग मूड'—में रहते हैं। राजेन्द्र बाबू अगर गाँधीजीके हृदय हैं, तो सरदार पटेल उनका दाहिना हाथ।

पेटलाद तालुका (गुजरात) के करमसद नामक गाँवके निवासियोंको १८५७ के दिनोंमें तीन वर्ष तक इस बातका बड़ा आश्चर्य था कि उनका एक पड़ोसी झवेर भाई अचानक कहाँ चला गया। उन्हें यह पता नहीं कि उनका यह किसान साथी कुदाल और फावड़े को भूल कर भारतीय विद्रोहका बिगुल बजानेवाली वीरांगना लक्ष्मी बाईके झण्डेके नीचे जा डटा है। हलके बदले अब उसके हाथोंमें तलवार है और भारतके अंग्रेजोंको दूर भगा डालनेके सपनोंमें वह दिन-रात पागल बना रहता है। भला आज़ादीके ऐसे सैनिकको अपने पुत्रकी जन्म-तिथि लिखनेका अवकाश मिलता! और अगर उसे वह याद भी रहा हो, तो अपनी मृत्युके साथ इसे भी लिये चला गया और अपने देशको, गोया अपनी अधूरी तमन्नाको पूरी करनेके लिए, अपनी विरासतमें दो सैनिक दे गया—विट्ठलभाई और वल्लभभाई।

प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही पाकर वल्लभाई पेटलाद, नडियाद और बड़ौदाके स्कूलोंमें दाखिल हुए और वहाँसे मैट्रिक पास किया। फिर मुख्तारी पास करके गोधरामें 'प्रैक्टिस' शुरू की और कुछ ही दिनोंमें चोटीके मुख्तारोंमें गिनती होने लगी। जब रुपये हाथोंमें आये, तो विलायत जाकर बैरिस्ट्री पास करनेकी ख्वाहिश जोर मारने लगी और एक स्टीमर कम्पनीसे ख़त-क़िताबत भी शुरू हुई।

कम्पनीका अंतिम पत्र बोरसदमें वकालत करनेवाले इनके बड़े भाई विट्ठलभाईके हाथोंमें पड़ गया और उनका मन विलायत-यात्रा पर ललच गया। वल्लभभाईने भरी हामी भरी और १५ दिन बाद ही इनकी जगह पर बड़े भाई विलायतके लिए रवाना हो गये। तीन वर्ष बाद जब विट्ठलभाई बैरिस्ट्री पास कर लौट आये, तो वल्लभभाई भी रवाना हुए। वहाँ पहुँचते ही वह अध्ययनमें लगे और परीक्षा में प्रथम श्रेणीमें प्रथम स्थान प्राप्त किया, ५० पौण्डकी छात्रवृत्ति मिली और चार टर्मकी फीस भी माफ हो गई। परीक्षासे छुट्टी मिलनेके दूसरे ही दिन वह स्वदेशके लिए रवाना हो गये—सैर-सपाटेमें एक दिन भी बितानेके लिए इनके पास वक्त कहाँ ?

अहमदाबादमें आकर बैरिस्ट्री शुरू की और दोनों हाथोंसे पैसे बटोरना शुरू किया। विट्ठलभाई बम्बईमें प्रैक्टिस कर रहे थे और साथ-साथ लोक-सेवाके कामोंमें भी दिलचस्पी लेते थे। दोनों भाइयोंमें यह तय हुआ कि छोटा भाई रुपया कमाये और घरकी देख-रेख करे और बड़ा भाई लोक-सेवाका कार्य करे। वल्लभभाईने सहर्ष इसे स्वीकार कर लिया; लेकिन यह कब संभव था कि जो व्यक्ति स्वेच्छासे अपने भाईको ऐसी सुविधा दे सकता है, वह स्वयं उस ओर जानेसे मुँह मोड़ लेगा ?

फिर भी ये बैरिस्ट्रीमें लगे रहे और देश तथा समाजकी ओरसे बिलकुल बेफिक्र रहे। उन दिनोंकी अपनी ज़िन्दगीके बारेमें वह स्वयं कहते हैं—"दुर्गापूजाके दिन मैं सैर-सपाटों और आनन्द-विनोदोंमें गुजारता था। उन दिनों मैं मानता था कि इस अभागे

देशके निवासियोंके लिए यही आवश्यक है कि वे विदेशियोंका अनुकरण करें।.......उन दिनों मेरा मन एक ही निष्कर्ष निकाल सका था कि हम भारतवासी हल्के और नासमझ हैं और हम पर राज्य करनेवाले विदेशी हमारे शुभचिंतक, उद्धारकर्त्ता और उच्च जीवन के लोग हैं। हमारे देशवासी तो केवल गुलाम ही रहने योग्य हैं।"

उन्हीं दिनों दक्षिण अफ्रिकासे लौट कर गाँधीजी भारत आये थे और अहमदाबादके पास साबरमतीमें आश्रम बना कर रहने लगे। गाँधीजी अक्सर अहमदाबाद क्लबमें जाते और अपने विचारोंका प्रचार करते। लेकिन अपने आपमें मस्त रहनेवाले वल्लभभाईको वे नहीं आकृष्ट कर सके थे। वल्लभभाईने अपने एक मित्रसे एक बार कहा भी था—"गाँधी क्यों इन लोगोंके सामने ब्रह्मचर्यकी बातें कहते हैं? यह तो भैंसके सामने भागवत सुनानेकी-सी बात है।" इसी तरह एक दिन गाँधीजी अहमदाबाद क्लबमें अहिंसा पर भाषण दे रहे थे। उस समय सरदार पटेल पिछली बेंच पर बैठे हुए ताश खेल रहे थे और गाँधीजीकी बातों पर व्यंगपूर्वक मुस्करा रहे थे।

लेकिन ज्यों-ज्यों गाँधीजीकी सार्वजनिक सेवाका क्षेत्र व्यापक होता गया, सरदार पटेल उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होते गये। इसी समय गोधरामें प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलनका आयोजन हुआ। गाँधीजी इस सम्मेलनके सभापति थे। इस सम्मेलनमें रचनात्मक कार्य करनेके लिए एक कमिटी बनाई गई, जिसके मंत्री वल्लभभाई चुने गये। जिम्मेदारीका निभाना वल्लभाईका सर्वश्रेष्ठ गुण रहा है। सिर पर इस जिम्मेदारीके आते ही उन्होंने कार्य शुरू कर

दिया। उन दिनों वेगार-प्रथा बड़े जोरों पर थी; अतः सबसे पहला मोर्चा उसी ओर रहा। इन्होंने कमिश्नरको इसके बारेमें पत्र लिखा; लेकिन उसका उत्तर न आने पर इन्होंने सात दिनकी नोटिस दी कि उत्तर न मिला, तो हाईकोर्टके फैसलेके अनुसार वेगारको गैर-कानूनी ठहराने और प्रांतभरमें वेगार वन्द कर देनेका आन्दोलन शुरू कर दिया जायगा; लेकिन इन्हें आन्दोलन नहीं करना पड़ा। कमिश्नरने इन्हें बुलवा भेजा और चुपकेसे इनकी वातें मान लीं।

उसी समय खेड़ाके किसान-सत्याग्रहकी समस्या उठ खड़ी हुई। गाँधीजीके साथ सरदार पटेल भी इस सत्याग्रहमें कूद पड़े। इस सत्याग्रहके सिलसिलेमें सरदार पटेलने गाँव-गाँवमें घूमकर किसानोंकी दारुण अवस्थाका निरीक्षण किया और उनमें स्वावलम्बन और सत्याग्रहकी भावना जागृत की।

कुछ दिनोंके वाद यूरोपीय महायुद्ध छिड़ा और सरदार पटेल भी गाँधीजीके साथ घूम-घूम कर जनताको रँगरूटमें भरती होनेकी सलाह देते रहे। महायुद्धके वाद जब रौलेट ऐक्टका जमाना आया और चारों ओर उसके विरुद्ध आंदोलन किया जाने लगा, तो सरदार पटेलने भी पूरी मुस्तैदीसे उसमें भाग लिया और अन्तमें जालियाँ-वाला वागकी नृशंसतापूर्ण घटनाके वाद देशके जब सत्याग्रह-आंदोलनकी रणभेरी वजाई, तो अपनी प्रैक्टिस छोड़कर सरदार पटेल गाँधीजीकी वगलमें आ खड़े हुए। कहाँ तो इनके दिलमें ऊँची शिक्षाके वे रंगीन सपने थे और कहां सत्याग्रह छिड़ते ही अपने दोनों लड़कोंको सरकारी स्कूलसे भी हटा लिया था? गाँधीजी और सरदार

पटेलने वारडोली और आनन्द तालुकोंमें सत्याग्रह और लगान-चन्दीकी जोरदार तैयारियाँ कीं; लेकिन चौराचौरी-काण्डके कारण सत्याग्रहको स्थगित कर देना पड़ा। फिर कुछ दिन बाद जब गाँधीजी गिरफ्तार कर लिये गये, तो सारे गुजरातका भार इन्हींके कन्धों पर आ गया। इस समय सरदार पटेल गुजरातकी जनताके सामने उनके सच्चे नेताके रूपमें आये।

इन्हीं दिनों गुजरात विद्यापीठकी स्थापना की गई और उसके लिए देशके एक छोरसे दूसरे छोर—बर्मामें भी घूमकर पटेलने दस लाख रुपये एकत्र किये।

तब आया नागपुरका झण्डा-सत्याग्रह। सत्याग्रहके प्रथम डिक्टेटर श्री जमनालाल बजाजकी गिरफ्तारीके बाद उसके संचालनका भार सरदार पटेलके कन्धोंपर आया और इन्होंने अपने अनुशासन और संगठन-चातुर्यसे उसमें और भी गति ला दी। अन्तमें सरकारको झुकना पड़ा। गवर्नरने इन्हें बुलवाया और जनताकी सारी मांग पूरी करा कर ही इन्होंने दम ली।

इसी तरहकी विजय बोरसदके सत्याग्रह में भी हुई, जिसके फलस्वरूप बोरसद तालुकेके निवासी दो लाखके अतिरिक्त पुलिस-कर देने से नजात पा सके।

बोरसद-सत्याग्रहके बाद गांधीजी जेलसे छूट कर आगये और तब सरदार पटेलका भार कुछ हलका हुआ, लेकिन उसी साल इन्हें अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटीका चेयरमैन निर्वा-किया गया। कांग्रेसके प्रमुख नेताओंमें दो व्यक्तियोंने

अपने सार्वजनिक जीवनमें म्युनिसिपैलिटीकी चेयरमैनी की है। एक हैं पं० जवाहरलाल नेहरू और दूसरे सरदार पटेल। दोनोंने अपनी योग्यता और क्षमतासे जनता की ऐसी सेवा की, जिसकी प्रशंसा सरकार को भी करनी पड़ी।

लेकिन जिस कार्यने वल्लभभाईको सारे हिन्दुस्तानमें प्रसिद्ध बनाया और आदरणीय स्थान प्रदान किया, वह था बारडोलीका किसानसत्याग्रह। सन् १९२७ ई० में बारडोलीके किसानोंके लगानमें २२ प्रतिशतकी वृद्धि कर दी गई। किसानोंने अर्जियाँ दीं, आरजू-मिन्नतें कीं, लेकिन सरकारने एक नहीं सुना। अन्तमें तालुका भरके किसानोंकी सभा हुई, जिसमें निश्चय किया गया कि चढ़ी हुई मालगुज़ारी नहीं दी जाय। लेकिन वल्लभभाईने उन्हें पूरी मालगुज़ारी ही रोक देनेके लिए उत्साहित किया। काम खतरेका था, मालगुजारी रोकनेमें ज़र-जमीन सब कुछ नीलाम हो जानेका भय था। वल्लभभाईने सारे तालुकेमें घूम कर किसानोंको सत्याग्रहका मर्म समझाना शुरू किया। बारडोलीमें एक केन्द्रीय सत्याग्रह-कार्यालय खोला, जहाँसे "सत्याग्रह-समाचार" नामक दैनिक पत्र जारी किया गया। सर्वत्र समाचार और सरकारकी आज्ञाएँ पहुंचानेके लिए मोटरें रखी गईं। सारे तालुकेको मुख्य पाँच भागोंमें विभक्त किया गया और उनको एक-एक मुखियाके अधीन किया गया। इस तरह पूरी तैयारी और सरदारके कठोर अनुशासन के साथ बारडोलीका भारत-प्रसिद्ध सत्याग्रह शुरू हुआ। जब्तियों, गिरफ्तारियों, कुर्की और नीलामोंकी धूम मच गई। हजारोंकी

जमीन कौड़ियोंमें नीलाम होने लगी। पठान सिपाही गुण्डपन पर कमर कसने लगे। उनके अत्याचारोंसे सारा बारडोली एक बार काँप उठा। लेकिन सरदारका ऐसा कठोर अनुशासन था कि अपनी बहनों पर होनेवाले अत्याचारको भी सत्याग्रहियोंने बर्दाश्त कर लिया।

सत्याग्रहकी खबर चारों ओर आगकी तरह फैल गई और श्री कुंजरू, श्री ठक्कर आदि कितने ही नेता वहाँकी दशाके निरीक्षणके लिए जा पहुँचे। बम्बई कौंसिलके १६ सदस्योंने बारडोलीमें सरकारकी दमन-नीतिके खिलाफ इस्तीफा दे दिया। जमनालालजी भी वहाँ जा पहुंचे। अन्तमें कई नेताओंके बीचमें पड़नेसे सरकार और सरदार पटेलमें समझौता हुआ, जिसके अनुसार सरकारने घोषित किया कि वह 'जब्त जमीनें लौटा देगी, कैदियोंको छोड़ देगी और पटवारियों और चौकीदारोंको पुरानी जगहों पर बहाल कर देगी।' इस तरह बारडोली-सत्याग्रहमें सरदार पटेलकी शानदार विजय हुई।

इस विजयके बाद भी सरदार पटेल गुजरातके किसानोंको संगठित करनेमें लगे रहे। तब तक सन् १९३० का जमाना आ गया और गाँधीजीने देशमें नमक-सत्याग्रहका आन्दोलन शुरू किया। वल्लभभाई भी गुजरातके रास नामक स्थानमें सत्याग्रह शुरू करनेका विचार कर वहाँ जा पहुँचे। लेकिन वहाँ वे गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें तीन महीने कैद और ५०० रु० जुर्मानेकी सज़ा दे दी गई। जेलसे छूटते ही इन्होंने देखा कि सारे देशमें आन्दोलन तीव्र गतिसे चल रहा है। राष्ट्रपति मोतीलालजी उसी समय

गिरफ्तार कर लिये गये। जेल जाते समय इन्होंने सरदार पटेलको स्थानापन्न राष्ट्रपति बनाया। इनके समयमें धरसानाका प्रसिद्ध मोर्चा हुआ, जिसमें सत्याग्रहियोंकी सहनशीलता और अहिंसात्मकता भारतीय सत्याग्रह-आन्दोलनके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है। उसके बाद ही स्व० लोकमान्यकी वर्षीके दिन बम्बईमें एक विराट जुलूस निकाला, जिसे सरकारने गैरकानूनी करार दे दिया। फलतः कई नेताओंके साथ वल्लभभाई भी गिरफ्तार कर लिये गये। इस बार भी इन्हें तीन महीनेकी सज़ा दी गई।

इस बार जब सरदार पटेल जेलसे छूट कर आये, तो गाँधी-इर्विन समझौतेके अनुसार सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित कर दिया गया था। आर्डिनेन्स भी उठा लिये गये थे। उस साल कांग्रेसका अधिवेशन कराचीमें होने जा रहा था। सारे राष्ट्रने एक स्वरसे 'बारडोलीके वीर सेनापति' सरदार पटेलको अपना अध्यक्ष चुना और कराचीमें धूमधामसे अधिवेशन हुआ। लेकिन गोलमेज सभासे गाँधीजीके लौटते-न-लौटते सत्याग्रह फिर शुरू हो गया। सरदार पटेल गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें अनिश्चित काल तकके लिए जेलमें डाल दिया गया। इधर सत्याग्रह चलता रहा, गाँधीजी वगैरह भी गिरफ्तार हुए और फिर छूट भी आये। गाँधीजी पर सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित करनेके लिए दबाव डाला जाने लगा। उस समय उन्होंने लिखा था—"जब तक सरदार पटेल, खान अब्दुल-गफ्फारखाँ और जवाहरलाल नेहरू जीवित ही समाधिस्थ हैं, तब तक समझौता कैसे हो सकता है?" फिर भी समझौता हो गया

और आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। पूनाकी परिषद्, दिल्ली तथा राँचीमें कौंसिलवादियोंके सम्मेलन, बिहारका भूकम्प, पटनेमें महासमिति और कार्यसमितिकी बैठकें और कांग्रेस-पार्लमेण्टरी बोर्डकी स्थापना आदि जब हुए, तब सरदार पटेल जेलकी चहार-दीवारीमें बन्द थे। अन्तमें स्वास्थ्य अधिक गिर जानेके कारण सरकारने इन्हें छोड़ दिया। सन् १९३४ के अन्तमें उन्हें रिहा किया गया और बाहर आते ही कांग्रेस-पार्लमेण्टरी बोर्डका भार सिर आ पड़ा। सरदार एक सैनिककी तरह डट गये और चुनावके सिलसिलेमें गुजरात, युक्तप्रान्त, सीमाप्रान्त, पञ्जाब आदि सूबोंका इन्हें दौरा करना पड़ा। चुनावकी सफलताके बाद कांग्रेसने पार्लमेण्टरी उपसमितिकी स्थापना की और सरदार पटेल उसके भी अध्यक्ष बनाये गये। इस पदसे सरदार पटेलने जिस अनुशासन और नियंत्रणकी अपूर्व क्षमताका परिचय दिया, वह अन्यत्र दुर्लभ है। सात प्रान्तोंके कांग्रेसी मंत्रिमण्डलोंकी नीतिका सँचालन करना क्या कोई आसान काम था? सरदार पटेलकी दृढ़ताका ही यह फल है कि कांग्रेसी मंत्रिमण्डलोंका काम सुचारु रूपसे चलता रहा।

मादक द्रव्य-निषेध, जंजीबार लौंग-बहिष्कार-आन्दोलन, देशी-प्रजा मण्डल, हरिजन-आन्दोलन आदि कार्योंमें तो सरदारका पूर्ण सहयोग रहा ही, गाँधीजीने जिस किसी अनुष्ठानमें हाथ लगाया, सरदार पटेल निश्चय ही उसमें आगे रहे।

× × × ×

सरदार पटेल आँधीमें चलनेवाले सैनिक हैं। जहाँ आँधी रुकी कि उनका हृदय अपने आपसे विद्रोह करने लगता है।

"महात्माजी वालक, मूर्ख और शत्रुसे भी गुण ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत रहते हैं, किन्तु वल्लभभाई उन तीनोंका मूल्य संसारकी वाजार-दरसे अधिक नहीं लगाते।"

महात्माजी कहते हैं—'सरदार पटेल मुझे जिस स्नेहसे ढँके रहते हैं, उससे मुझे प्यारी माताके स्नेहकी याद आ जाती है।' लेकिन, सरदार पटेलमें गाँधीजीकी धार्मिकता रंच-मात्र भी नहीं। कुछ दिन पहले तक उन्होंने धार्मिक-ग्रन्थ पढ़े भी नहीं थे।

वैरिस्ट्रीके ज़मानेमें एक दिन वल्लभभाई एक मुकदमें में वहस मालूम कर रहे थे। वहीं, इनके नाम एक तार आया, खोल कर पढ़ लिया और उसे जेवमें डाल कर फिर वहसमें लग गये, जैसे कुछ हुआ ही न हो। शामको मालूम हुआ कि यह तार उनकी पत्नीकी मृत्युका था!

सरदार वहुत कम वोलते हैं और जो कुछ वोलते भी हैं, उसमें अपनी वात 'न' के वरावर रहती है।

कुछ लोगोंका कहना है—लेनिनके वाद रूसमें स्टालिनका जो स्थान हुआ, गाँधीजीके वाद भारतमें सरदार पटेलका भी वही स्थान होगा।

श्रीमती सरोजिनी नायडू

"One of the great women of Asia, She is a poetess, a revolutionary, a passionate worker for Hindu-Muslim Unity, an eloquent orator in several tongues, a politicion, a soldier." —John Gunther (Inside Asia.)

यदि रवि बाबूको भारतकी चिर-पिपासाकुल आध्यात्मिक भवनाको छन्दोंमें बाँध कर विश्व-साहित्यके सामने उपस्थित करनेका गौरव है, तो पराधीन भारतकी विह्वल पुकारको वाणीमें पिरो कर संसारके सामने उपस्थित करनेका श्रेय भारत-कोकिला सरोजिनी नायडूको ही है। उनकी वाणीमें भारतकी पराधीन आत्माकी छटपटाहट है, अर्द्ध-नग्न मानवताकी विवशता और करुणा है और है नौजवान भारतके प्रति आशा और उत्साहका सन्देश।

श्रीमती नायडूका जीवन भिन्न-भिन्न विरोधो तत्वोंका मधुर सम्मिश्रण है। उनके हृदयमें कविता है, उनकी वाणीमें चिनगारी है, उनके मस्तिष्कमें राजनीति है और उनके करोंमें है एक भारतीय सैनिकका चिर परिचित अहिंसा शस्त्र।

उनका व्यक्तित्व भारतीय नारी जातिके इतिहासमें एक अभूत-पूर्व वस्तु है। मक्खनसे भी कोमल, मिश्रीसे भी मधुर, लेकिन अवसर आने पर पत्थरसे भी कठोर और पुरुषसे भी कर्मठ! सरोजिनी नायडूका व्यक्तित्व भारतीय नारीत्व की एक जाज्वल्यमान प्रतिमा है, जिसका शानी एशियाभरमें श्रीमती सन-यात-सेनको छोड़कर और दूसरा नहीं।

इस नारीके हृदयमें एक ओर सौन्दर्यका कश्मीर अपनी सुषमा बिखेरता रहता है, तो दूसरी ओर कंगाल भारतकी जीर्ण कुटियोंका हाहाकार छाया रहता है। इस हास-विलास और हाहाकारके अन्त-र्द्वन्द्वसे घुली हुई उनकी वाणी भारतीय जनताको यह सन्देश देती रहती है कि अपने अधिकारोंके लिये लड़नेमें भी एक सौन्दर्य है, अपनी स्वतंत्रताके लिये आहुति देनेमें भी एक आनन्द है।

बचपनके बादसे इक्कावन वर्षकी इस अवस्था तक संघर्षमय राष्ट्रीय परिस्थितिमें भी जीवन और यौवनकी उमंगोंको सजीव रखनेवाली इस नारी-रत्नका व्यक्तित्व क्या एक-दो पृष्ठोंमें बाँधा जा सकता है?

१३ फरवरी १८८९ को हैदराबाद (दक्षिण) में श्रीमती सरोजिनी नायडूका जन्म हुआ था। इनके पिता डाक्टर अघोर-नाथ चट्टोपाध्याय स्वयं एक अच्छे विद्वान और विद्यानुरागी व्यक्ति थे। निज़ाम कालेजकी उन्होंने ही स्थापना की थी और जीवन भर वे निज़ाम राज्यमें शिक्षा-प्रचारका कार्य करते रहे थे। सरोजिनी नायडूका पालन-पोषण ही जब विद्यानुरागी वातावरणमें हुआ था,

तब इसमें आश्चर्य ही क्या कि उन्होंने बारह वर्षकी अवस्थामें ही मद्रास विश्वविद्यालयसे मैट्रिककी परीक्षा पास कर ली। निज़ाम सरकारने विलायत जाकर पढ़नेके लिये इन्हें एक छात्रवृत्ति दी और १८६५ में वह इङ्गलैण्डके लिये रवाना हुईं। १८६८ तक वहाँके किंग-कालेजमें पढ़ती रहीं और अक्सर इटली आदि देशोंका भ्रमण भी करती रहीं। अत्यन्त कुशाग्र और तीव्र-बुद्धि तो यह थीं ही, अंग्रेजी विश्वविद्यालयके वातावरणने इनकी प्रतिभाको और भी विकसित किया। तेरह वर्षकी आयुमें ही इन्होंने अंग्रेज़ीमें १३०० पंक्तियोंकी एक कविता सिर्फ छः दिनोंमें लिख डाली थीं और उन्हीं दिनोंमें २००० पंक्तियोंका एक नाटक भी लिख डाला था। इङ्गलैण्डमें शिक्षा समाप्त कर १८६८ में यह स्वदेश लौट आईं और उसी साल इनका अन्तर्जातीय विवाह डा० गोविन्द राजूलू नायडूके साथ हुआ।

पाश्चात्य-संसारमें रह कर सरोजिनी नायडूने वहाँके नारी-समाजके विकासका जो चित्र देखा था, वह इन्हें भारतीय नारी-समाजकी हीन दशाको देखकर विद्रोहकी भावनासे प्रेरित किया करता था। निज़ाम राज्यमें परदेका बहुत जोर है और खास कर हैदराबाद परदेका घर है। देवी सरोजिनी नायडूने सर्वप्रथम परदा-विरोधी आन्दोलनको लेकर सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया। साथ ही समाज-सुधारके कार्योंमें भी भाग लेने लगीं। उन्हीं दिनों इनकी दो कविता-पुस्तकें अंग्रेजीमें प्रकाशित हुईं—'दी गोल्डेन थ्रेशहोल्ड' और 'दी वर्ड आफ टाइम'। इन दोनों पुस्तकोंके

प्रकाशित होते ही इङ्गलैण्डमें एक सनसनी फैल गयी थी। राष्ट्रीय, भावना, स्वदेश-प्रेम और स्वाभिमानके भावोंसे इन पुस्तकोंकी कविताएँ ओत-प्रोत हैं।

१९१५ के लगभग इन्होंने सार्वजनिक जीवनमें एक प्रभावशाली और सफल वक्ताके रूपमें प्रवेश किया। इन्होंने हिन्दुस्तानके प्रत्येक भागमें घूम-घूम कर विद्यार्थियों और सोई हुई नारी-जातिके कानोंमें जागरणका मंत्र फूँकना प्रारम्भ किया। जहाँ जातीं, इनके व्याख्यानोंकी धूम मच जाती। विद्यार्थियोंमें एक नई जान आई और सदियोंसे सोई हुई नारी जाति अंगड़ाइयाँ लेकर उठ बैठी। १९१६ में सम्भवतः लखनऊमें सरोजिनी नायडू कांग्रेसके अधिवेशन में सम्मिलित हुई और इस अवसर पर इन्होंने 'स्वायत्त-शासन' पर एक प्रभावशाली भाषण दिया। १९१७ में इन्होंने सारे भारत का दौरा किया और जगह-जगह व्याख्यानों द्वारा राष्ट्रीय भावना को जागृत करती रहीं। मद्रासमें दिसम्बरके दिनोंमें इनकी कई व्याख्यानमालाएँ हुईं। मई १९१८ में कांजीवरममें मद्रास प्रान्तीय कांग्रेसका अधिवेशन इन्हींकी अध्यक्षतामें हुआ। १९१८ में इन्होंने पुनः भारतव्यापी दौरा किया और सर्वत्र राष्ट्रीय भावनाका और भी विकास होता गया। उस सालके अन्तमें दिल्लीमें कांग्रेसके अधिवेशनके अवसर पर अखिल भारतीय सोशल सर्विस कान्फ्रेन्स का आयोजन किया गया। सर्व सम्मतिसे सरोजिनी नायडू ही उसकी अध्यक्षा चुनी गईं। सर फिरोजशाह मेहता और श्रीगोखले के सम्पर्कमें तो थीं ही, जब श्रीमती एनीबेसेंटने 'होमरूल' की

आवाज बुलन्द की, तो इन्होंने बड़ी लगन और तन्मयतासे उसमें सहयोग दिया। उसके एक डेपुटेशनके साथ यह विलायत भी गईं और वहाँ अपने पक्षका इतनी उत्तमतासे समर्थन किया कि सब लोग प्रभावित हो गये। इसी यात्रामें इन्होंने जेनेवामें अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री-मताधिकार-परिषदमें भी एक महत्वपूर्ण भाषण दिया। १६२२ में इन्होंने कांग्रेसकी ओरसे दक्षिण अफ्रिकाका दौरा किया और उसी साल इन्हें बम्बई कारपोरेशनकी सदस्या और बम्बई प्रांतीय कांग्रेस कमिटीकी अध्यक्षा भी निर्वाचित किया गया। पंजाबके हत्या-काण्डके कुछ दिन बाद यह पुनः इङ्गलैंड गईं और वहाँके भाषणोंमें स्त्रियों पर किये गये अत्याचारोंका इन्होंने जैसा रोमांचकारी वर्णन किया, उससे भारतमंत्रीका भी हृदय काँप उठा था। विलायत से वापस आने पर यह महात्मा गाँधीजीके साथ सत्याग्रह-आन्दोलन में डट गईं। नागपुरके झण्डा सत्याग्रहके संगठनके लिये सारे मध्यप्रान्तमें घूम-घूम कर इन्होंने आंदोलन किया। 'मोपला काण्ड' होने पर इन्होंने बहुत कड़े शब्दोंमें सरकारकी तीव्र आलोचना की, जिस पर बिगड़ कर इन्हें सरकारने अपने शब्द वापस लेने और माफी माँगनेके लिये कहा। इन्होंने निर्भीकताके साथ सरकार पर लगाये गये सभी आरोपोंको प्रमाणित कर दिखलाया।

१६२५ में सारे राष्ट्रने एक स्वरसे इन्हें कांग्रेसकी सभानेत्री निर्वाचित किया। इस अवसर पर कई दिनों तक यह अपना भाषण तैयार करती रहीं; लेकिन लिखित भाषण देनेसे चिढ़ होने के कारण इन्होंने सोचा कि अपने विचारोंकी स्वतन्त्रताको कागजों

में बाँध देना मेरे लिये असम्भव है और ऐन मौके पर जब वह सभानेत्रीके आसनसे बोलनेके लिये उठीं, तो एक बिलकुल नया दूसरा ही भाषण दे डाला। उन दिनों साम्प्रदायिक झगड़ोंका बोल-बाला था और चारों ओर हिन्दू-मुस्लिम कलहकी आग बढ़ती जा रही थी। श्रीमती सरोजिनी नायडूने अपने भाषणमें ही कहा था—"भारत माताकी आज्ञाकारिणी पुत्रीकी हैसियतसे मेरा यह काम होगा कि अपनी माताके घर ठीक करूँ और इन शोचनीय झगड़ों का निपटारा करूँ।" और अपने इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये इन्होंने जी-तोड़ कोशिश की।

१९२८ के अन्तमें सरोजिनी नायडू संयुक्त राष्ट्र अमेरिका गईं और वहींसे अफ्रिकाकी भारतीय कांग्रेसकी सभानेत्री निर्वाचित होकर वहाँ चली गईं। १९३० में गाँधीजी चाहते थे कि स्त्रियाँ सत्याग्रहसे अलग रह कर विदेशी वस्त्रों और शराबकी दूकानों पर ही धरना देनेका काम करें। लेकिन श्रीमती सरोजिनी नायडूके हृदयमें तो वह आग है, जो महिलाओंको पुरुषोंसे किसी हालतमें कम नहीं समझती। फलतः गाँधीजीके गिरफ्तार होते ही ये धरासना और वडालाके नमक-सत्याग्रहका संचालन करने लगीं। उसी समय इन्हें गिरफ्तार करके यरवदा जेलमें बन्द कर दिया गया।

यरवदा जेलमें सप्रू-जयकरके उद्योगसे जो सन्धि-चर्चा हुई थी, उसमें नेहरू-द्वयके साथ यह भी सम्मिलित थीं। गाँधी-इर्विन-समझौतेके बाद जब गाँधीजीने दूसरी गोलमेज परिषद्में जानेका निश्चय किया, तो इन्हें भी परिषद्में सम्मिलित होनेका निमन्त्रण

मिला और इङ्गलैण्डमें इन्होंने गाँधीजीकी पूरी सहायता की। वहाँसे लौटने पर जब पुनः सत्याग्रह छिड़ा, तो इन्हें भी अन्य नेताओंके साथ गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया।

श्रीमती सरोजिनी नायडू प्रारम्भसे ही हिन्दू-मुस्लिम एकताकी जबर्दस्त समर्थक हैं। खिलाफत-आन्दोलनके जमानेमें इन्होंने इसमें प्रमुख भाग लिया था। मुस्लिम-लीगके मंचसे भी इन्होंने कई वार भाषण दिया है। कांग्रेसकी कार्य-समितिमें भारतीय महिलाओंका प्रतिनिधित्व करनेका गौरव इन्हींको प्राप्त है।

इनका व्यक्तिगत पारिवारिक जीवन बहुत सुखी तथा आनन्दमय है। इनके पति डाक्टर नायडू निज़ाम सरकारके प्रधान मेडिकल अफ़िसर हैं और हैदराबादमें रहते हैं। इनके दो लड़के और दो लड़कियाँ हैं। इनके भाई श्रीमती कमला चट्टोपाध्यायके भूतपूर्व पति श्री हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय भी एक उच्च कोटिके अंग्रेजीके कवि और लेखक हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालयने सरोजिनी नायडूको डी० लिट्की उपाधि प्रदान की है।

× × × ×

चालीस वर्षोंसे लगातार नीरस राजनीतिके संघर्षमें रहने पर भी सरोजिनी नायडूकी नारी-सुलभ कोमलता ज्यों की त्यों बनी हुई है।

उनकी वाणीमें अभी भी 'भारत-कोकिला' की मिठास है। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। सुना जाता है कि सत्याग्रहके जमानेमें पुलिसको इन्हें गिरफ्तार करनेमें बड़ा भय हो रहा

था। अपनेको गिरफ्तार करा देनेके लिये यह कई पुलिसकी चौकियोंमें गईं और तब इन्हींकी सलाहसे पुलिसने इन्हें गिरफ्तार कर लिया।

अपने बच्चे और मित्रोंके बीच सरोजिनी नायडू हँसी-खुशीकी प्रतिमा बन जाती हैं। हिन्दुस्तानमें ये ही सबसे हँसमुख राज-नीतिज्ञ हैं।

एक बार 'इनसाइड एशिया' के लेखकने इनसे पूछा था—कांग्रेस वर्किंग कमिटीके सभी सदस्य एक-एक कर क्रान्तिकारी विचारके क्यों हैं? इन्होंने तुरत ज़बाब दिया था—चूँकि ये सभी पराधीन मुल्कके हैं।

सरोजिनी नायडू धार्मिक भेदभावसे परे हैं। हिन्दू और मुसल-मान दोनोंकी इनमें समान आस्था है।

अंग्रेजी पर इनका असाधारण अधिकार है। इनकी धारा-प्रवाह अंग्रेजीमें इस भाषाके बोलनेवाले भी बह जाते हैं और मुक्त-कण्ठसे इनकी प्रशंसा करते हैं।

चक्रवर्त्ती श्री राजगोपालाचार्य

दुबला-पतला शरीर, सिरके बाल जड़से कटे हुए, आँखों पर काला चश्मा, मुख पर प्रसन्नता और मुस्कुराहटका भाव लाकर बातें करनेकी आदत, खद्दरका कुर्ता, धोती और बायें कंधे पर पड़ी चौपेती चद्दर तथा पैरमें चप्पलें, ये हीं उस महानुभावकी विशेषताएँ—अगर इन्हें विशेषताएँ कहेंगे—हैं, जिनका नाम चक्रवर्ती श्रीराजगोपालाचार्य है।

मित भाषी, प्रशान्त स्वभाव, विकट परिस्थितियोंमें भी चेहरे पर झुँझलाहट या घबराहटका भाव न दिखाने वाले इस सादगी और त्यागकी प्रतिमूर्तिमें हम विलक्षण बुद्धि, अपूर्व तर्क-शक्ति और निःस्वार्थ देश-हितैषिताका उदाहरण पाते हैं। हरेक कामको नियमित और सोलहो आने ठीक तौरसे करने—अपने कष्ट और असुविधाका जरा भी खयाल न करते हुए और दूसरोंकी बातें सहानुभूतिसे, धैर्यसे सुननेमें आप विशेष शक्तिका परिचय देते हैं।

बड़े-बड़े वक्ता और विद्वान् अपनी विद्वत्तापूर्ण बातोंको श्री राजगोपालाचार्यके सरल, सुलभ, संक्षिप्त, सबके समझने लायक भाषा और शैलीमें खण्डित होते देख कर दाँतों अंगुली काटने लगते हैं। आचार्यजी रोजमर्राके दृष्टान्तों, लोकोक्तियों और

कहानियों द्वारा बड़ीसे बड़ी जटिल बातको भी हृदयंगम करा देनेकी कलामें अद्वितीय हैं। आलोचकोंने आपके शासनको (जब आप मद्रासके प्रधान मंत्री थे) Goverment by Parables कहा है।

आप विद्वानोंकी सभामें जिस तरह अटल रहते हैं, उसी तरह उद्दण्ड भीड़में भी, बावजूद निर्बल शरीरके, अद्भुत साहस और निर्भयताका परिचय देते हैं। उत्तेजना और कटुतापूर्ण परिस्थिति में एक समयोचित मृदुल विनोद या वक्तव्य द्वारा वातावरणको हल्का बना देने और श्रोताओंको शान्त कर देनेकी कलामें आप सिद्ध-हस्त हैं।

आपकी स्मरण और समालोचना-शक्ति इतनी तीव्र और तीक्ष्ण है कि भूल-भुलैओंमें फँसाने वाली कोई बात कितनी ही दीर्घ क्यों न हो, उसके लचर नुक्तोंको आप अनायास पकड़ लेते हैं और अपने दृढ़, पर शान्त स्वरमें उसके आधार और परिणामकी धज्जियां उड़ा देते हैं।

अपनी योग्यता और सूक्ष्म बुद्धिके कारण देशके राजनीतिक क्षेत्रमें, खास कर कांग्रेसमें आपको विशिष्ट स्थान प्राप्त है। आपको आधुनिक भारतका चाणक्य कहा जा सकता है। राजनीतिक क्षेत्र में आपका नाम जहां आदर और आकर्षण पैदा करनेका कारण है, वहाँ खास तरहके लोगोंमें भय और घबराहट भी पैदा करता है। महात्माजीके आप अनन्य भक्त हैं। महात्माजीके सिद्धान्तोंमें आपका पूर्ण विश्वास है और आप उनके एक प्रबल समर्थक हैं। प्रेमसे

लोग उन्हें राजाजी भी कहते हैं, जिन पर बिना किसी भेदभावके मित्र और विरोधी सब अभिमान कर सकते हैं।

आपका जन्म १८७९ ई० मद्रास प्रान्तके सलेम जिलेमें हुआ। बी० ए० तककी शिक्षा समाप्त होने पर आपने बी० एल० की परीक्षा पास की और सन् १९०० में सफलतापूर्वक वकालत शुरू कर दी। प्रारम्भसे ही सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेनेकी आपकी प्रवृत्ति थी। सलेम म्युनिसिपैलिटीके चेयरमैनकी हैसियतसे आपने प्रशंसनीय काम किया।

१९१९ में महात्माजीने जब 'रौलट ऐक्ट' के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू कर दिया, तब राजा जी उसमें शामिल हो गये। १९२० में कांग्रेसने अपने कलकत्ताके अधिवेशनमें जब असहयोग-आन्दोलनका प्रस्ताव पास किया, तब राजाजीने दक्षिण भारतकी तरफसे जोरोंसे उसका समर्थन किया और अपनी 'प्रैक्टिस' छोड़ दी। महात्माजीके जेल जाने पर राजाजीने उनके 'यंग इण्डिया' साप्ताहिक पत्रका सम्पादन किया। १९२१-२२ तक कांग्रेसके जेनरल सेक्रेटरी पद पर रहे और असहयोग-आन्दोलन जारी रहने तक वर्किङ्ग कमिटीके सदस्य रहे। असहयोगके सम्बन्धमें आपको भी कारावासका दण्ड मिला। फिर १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलनमें आपको २१ महीने की सजा मिला। पर गान्धी-इर्विन सन्धिसे कारण १९३१ में रिहा कर दिये गये। उसके वाद जब आर्डिनेन्स जारी किये गये, तव आप फिर कानून भंग कर जेल गये और मीयाद पूरी कर १९३२ में वाहर आये। उस समय कांग्रेसके प्रेसिडेण्ड डाक्टर किचलूके

क़ैद हो जाने पर आपने कांग्रेस-प्रेसिडेण्टके पदसे काम किया।

अस्पृश्यता-निवारणके सम्बन्धमें जब महात्माजीने उपवास शुरू किया, तब राजाजीने कांग्रेस-प्रेसिडेण्टका पद श्री राजेन्द्र प्रसादको सौंप दिया और वैयक्तिक सविनय कानून भंग आन्दोलनके सिल-सिलेमें ७ अगस्त १९३३ में फिर जेल गये। ६ फरवरी १९३४ को बाहर आये। फिर कांग्रेस वर्किङ्ग कमिटीके सदस्य तथा तामिलनायडू कांग्रेसके प्रेसिडेण्ट चुने गये।

राजाजी कांग्रेसके राजनीतिक कार्योंसे अलग होकर रचनात्मक कार्योंमें लग गये। इतनेमें नये विधानके अनुसार प्रांतीय स्व-शासन के लिये नयी असेम्बलीके सदस्योंके चुनावका समय आया और कांग्रेसके चुनावमें भाग लेनेका निश्चय किया। तब राजाजीने कांग्रेसकी जीतके लिये ऐसे संगठित प्रयत्न किया कि मद्रास प्रांतीय असेम्बलीके २१५ सदस्योंमें १५९ कांग्रेसी सदस्य चुने गये।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलोंमें मद्रासका ही ऐसा मंत्रिमंडल था, जिसने सबसे पहले मद्यनिषेधके लिए कानून पास किया था। राजाजीने इस कानूनका प्रयोग सर्वप्रथम अपने ही जिले पर किया और शीघ्र ही सारे सलेमसे मद्य-पान उठ गया।

प्रधान-मन्त्रीकी हैसियतसे राजाजीने शासन-व्यय में पूरी मित-व्ययितासे काम लिया था। प्रान्तीय नौकरोंके माहवार वेतनमें इन्होंने कठोरतापूर्वक कमी कर दी। जब स्वयं प्रधान-मन्त्री एक ही नौकर रखते थे, जो उनका खिदमतगार, रसोइया और स्टेनो,

तीनोंका काम करता था, तो फिर मंत्रिमण्डलके अन्य सदस्य तड़क-भड़क और शान-शौकतसे कैसे रह सकते थे ?

१४ जुलाई १६३७ को कांग्रेस-पार्टीने मंत्रि-मंडल वनानेका निश्चय किया। राजाजी पार्टीके नेताकी हैसियतसे प्रधान मंत्री नियुक्त किये गये। राजाजीने अपने ऊपर अर्थ और गृह-विभागका भार लिया। अपना मजबूत शासन-व्यवस्था, प्रजाहित-साधक कार्य और कार्य-पटुतासे राजाजीने मद्रास असेम्बलीको सारे देशकी नजरोंमें ऊपर उठा दिया। आपकी दूरदर्शिता, असेम्बलीमें आपकी वाक्‌चातुरी और वक्तृताने आपको एक अत्यन्त कुशल राजनीतिज्ञ और शासकके रूप प्रकट किया।

जर्मनीके साथ मित्र-राष्ट्रोंके वर्तमान युद्धके शुरू होने पर जब कांग्रेसने युद्धके उद्देश्यको स्पष्ट करनेके लिये भारतकी आज़ादीकी मांग पेश करते हुए कांग्रेसी मंत्रीमंडलको शासन-व्यवस्थाका भार त्याग देशका आदेश दिया, तब राजाजीने अन्य-मंत्रियोंके साथ नवम्बर १६३६ में अपने पदसे इस्तीफा दे दिया। २७ महीनेके शासन-कालमें देश-हित और समाज-सुधारके अनेक महत्वपूर्ण काम हुए। उनमें 'मद्यपान-निषेध बिल' और 'डेट-रिलीफ (ऋण-मोचन) बिल' सबसे अधिक महत्वपूर्ण थे और इनके लिये राजाजी विशेष रूपसे जिम्मेवार हैं। स्कूलोंमें मातृ-भाषाके माध्यम द्वारा शिक्षा देनेकी व्यवस्था भी आपने निकाली। मन्दिर-प्रवेश सम्बन्धी अनुकूल बिल और व्यवस्था भी पदत्यागके पहले ही करानेमें आप समर्थ हुए।

राजाजी हिन्दी-हिन्दुस्तानीको देशकी सामान्य भाषा बनानेके प्रवल समर्थक हैं। आप इस भाषाकी जानकारी प्रत्येक भारतीयके लिये अत्यावश्यक समझते हैं। 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के आप एक ट्रस्टी हैं और आपने सभाके अध्यक्ष महात्मा गान्धीकी तरफसे सभाके प्रवर्तक (डाइरेक्टर) का काम किया है।

आपने अपने मंत्रित्व कालमें हिन्दुस्तानीको हाई स्कूलकी प्रथम तीन श्रेणियोंमें अनिवार्य रूपसे सिखानेका निश्चय किया और १९३८-३९ में १२५ हाई स्कूलोंमें हिन्दीकी अनिवार्य पढ़ाई शुरू की। दूसरे वर्ष १०० और स्कूलों में हिन्दी रखी गयी।

राजाजी कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमके विशिष्ट समर्थकोंमें हैं। १९२३ की गया-कांग्रेसमें ही यह सर्वविदित हो गया था कि आप गान्धीजीके अत्यन्त नज़दीकी सहयोगियोंमें हैं। तबसे आप अपरिवर्तनवादी दलके एक प्रमुख नेता माने जाते थे। अखिल भारतीय-चर्खा-संघकी कौंसिलके आप शुरूसे १९३५ तक सदस्य थे। 'प्राहिविशन लीग आफ इण्डिया' (भारतीय मद्यपान-निषेध संघ) के आप मंत्री थे। कांग्रेसके मद्यपान-विरोध-आन्दोलनके आप संचालक-सदस्य थे।

खादी-प्रचारके लिये भी आपने बड़ा काम किया है। त्रिचनगोड (सलेम) का आपका 'गान्धी आश्रम' आपके खादी-प्रेम और रचनात्मक कार्य-शक्तिका एक सुन्दर उदाहरण है। इस आश्रम द्वारा अस्पृश्यता-निवारण और शिक्षा-प्रचारका भी काम होता है।

तमाम सार्वजनिक कामोंमें व्यस्त रहते हुए भी आपने कुछ ज्ञानवर्धक और मनोरंजक पुस्तकें लिखी हैं। हिन्दीमें भी आपकी कुछ पुस्तकोंका अनुवाद हो गया है।

राजाजी कट्टर ब्राह्मण कुलमें पैदा हुए हैं और हिन्दू धर्मके मर्मको पूर्णतया समझते हैं। गीता और उपनिषदों पर आपकी लिखी पुस्तकें इसका प्रमाण हैं। अछूत कहलानेवाली जातियोंके मन्दिर-प्रवेशका अधिकार दिलानेके लिये आपके प्रयत्न और कार्य सर्वविदित हैं। छूतछातके अलावा हिन्दू समाजमें जात-पांतका जो भेद धर्मकी कसौटी बना हुआ है, राजाजी उसे हिन्दू-धर्मके सच्चे आदर्शोंके अनुकूल नहीं मानते। आपने अपनी कन्याका महात्माजी के सुपुत्र श्री देवदास गाँधीसे विवाह कराकर अपनी समाज-सुधार प्रवृत्तिका व्यावहारिक प्रमाण दिया है।

राजाजीमें महान् चारित्रिक बल है। धन और शान-शौकतका प्रलोभन इनकी छायाको भी नहीं छू गया है। हिन्दुस्तानमें कांग्रेसी प्रधान-मंत्रियोंमें यही एक ऐसे व्यक्ति थे, जो मंत्रित्वके पहले जिस मकानमें रहते थे, मंत्री होनेपर भी उसी मकानमें रहे और आज भी उसी मकानमें रह रहे हैं।

उनके वाक्-चातुर्यमें अद्भुत् रस है, विलक्षण चमत्कार है। कभी-कभी उनकी विद्वत्ताकी इस विलक्षणताको देखकर लोग यह भूल जाते हैं कि उनके अन्दर एक कठोर राजनीतिज्ञ और शुष्क शासक भी छिपा बैठा है।

अपने सिद्धान्तों पर हिमालयकी तरह अटल रहना राजाजीका स्वभाव है। हिन्दीके विरुद्ध मद्रासके कुछ व्यक्तियोंके आन्दोलनको उन्होंने जिस उपेक्षाकी दृष्टिसे लिया, यह उनकी दृढ़ताका ज्वलंत उदाहरण है।

ज़िन्दगीके क्षणिक आनन्द-उत्सवसे राजाजीको विराग-सा है। तीन-चार साल पहले तक उन्होंने सिनेमा भी नहीं देखा था।

—श्री देवदूत विद्यार्थी।

पं० गोविन्दवल्लभ पन्त
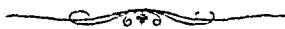
जिस समय मैं पंतजीके विषयमें कुछ सोचता हूं, उस समय मुझे विशाल धवल हिमाचलकी याद आ जाती है। हिमालयकी तरह पंतजीका व्यक्तित्व महान्, गम्भीर तथा निर्मल है।

अभी कुछ महीने पूर्व मुझे एक बातसे कुछ कुतूहल-सा हुआ। बात यह थी कि एक प्रसिद्ध अंग्रेज पत्रकार इसका बड़ा इच्छुक जान पड़ा कि जहाँ कहीं भी पंतजीका जिक्र आये वहाँ पहाड़ी आदमी (Hill-man) शब्दसे उन्हें सम्बोधित किया जाय। निस्सन्देह पंतजीकी हर बातमें कुछ-न-कुछ पहाड़ीपन मालूम होता है और वे पहाड़ी-प्रतिभाके समुज्ज्वल प्रतिरूप हैं।

कुमाऊंके इतिहासमें यह एक महत्वपूर्ण घटना है कि शिवाजी, नाना साहिब तथा तिलककी जन्मभूमि—महाराष्ट्रसे चलकर पंत जातिके कुछ लोग कुमाऊँमें मणिकोटि राजवंशके शासकोंके राज्यमें बस गये। महाराष्ट्रके चितपावन ब्राह्मणोंकी तरह पंत लोग भी बड़े चतुर और राजनीतिज्ञ होते हैं। उनके इन्हीं गुणों और जातिगत संगठनकी भावनाके कारण उनके बारेमें 'पंथिया चालो' यानी 'पंतों की चतुर चाल' लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गई है। इसी पंत-जातिमें जन्म हुआ है हमारे चरित्र-नायक का।

× × × × ×

पंतजीका पैतृकगृह तो भीमतालके पास सिलौटी गाँवमें है, परन्तु उनका जन्म (शायद) सन् १८८५-८६ ई० के बीच अपने नाना पं० बद्रीदत्त जोशीजीके यहाँ दन्या मुहल्ले, अलमोड़ेमें हुआ था। उनके पिता पं० मनोरथ पंत रेवेन्यू-विभागमें कर्मचारी थे और वह अधिकतर गढ़वाल ही में रहे, इसलिये पं० गोविन्दवल्लभ पंतका लालन-पालन तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा अपने नानाके यहाँ अलमोड़ेमें ही हुई। पं० बद्रीदत्त जोशी 'सदरमीन साहब' के नामसे कमाऊंमें अब भी प्रसिद्ध हैं। उनके ज़मानेमें कुमाऊंका सारा प्रबन्ध तत्कालीन कमिश्नर सर हेनरी रामज़ेके हाथमें था। सर हेनरी 'कुमाऊंका राजा' कहलाया और सदरमीन साहब उसके दाहिने हाथ थे। सदरमीन साहब को यदि कुमाऊंका 'भूतपूर्व मंत्री' कहा जाय, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। कुमाऊंके इस भूतपूर्व मंत्री के कई गुण युक्तप्रान्तके भूतपूर्व प्रधान मंत्रीमें आये हैं। निश्चय ही पंतजीको अपने नानाकी मेधा-शक्ति, राजनीतिज्ञता तथा शासन-संचालन और क्षमता विरासतके रूपमें मिली हैं।

बचपनसे ही पंतजी अध्ययनशील तथा सरल प्रकृतिके हैं। खेलनेकी ओर उन्हें विशेष रुचि न थी। उनकी शिक्षा एफ० ए० तक रामजे कालेज अलमोड़ेमें हुई। मैट्रीक्यूलेशनमें पंतजी प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए और उन्हें छात्र-वृत्ति मिली।

अपने चरित्रवान तथा प्रतिभाशाली अध्यापकोंसे पंतजीने पढ़ने-लिखनेके अतिरिक्त देश-प्रेमकी शिक्षा भी ग्रहण की। देश-प्रेम तथा उच्च जीवनकी भावना तो बड़के बीजकी तरह उनके हृदयमें

जन्मसे ही छिपी थी, केवल प्रस्फुटित होनेके लिए अच्छी जमीनकी आवश्यकता थी।

पंतजी आज बहुत ही उच्चकोटिके पार्लमेंटेरियन कहे जाते हैं यद्यपि एक सम्मोहक व्याख्याता (Hypnotic Orator) की तरह उनके भाषणोंमें चमत्कारिकता तथा भावुकता नहीं होती, लेकिन उनके भाषणोंमें अकाट्य तार्किकता रहती है। इसीलिए व्याख्याता कम, तार्किक अधिक हैं; लेकिन उनकी प्रभावशाली तर्क-शक्तिका भी एक इतिहास है और यह उनके जीवन-इतिहासका एक महत्वपूर्ण अंश है। पंतजीने विद्यार्थी जीवनसे ही तर्क- शक्तिका अभ्यास प्रारम्भ कर दिया था। भाषण देनेका प्रथम प्रयास पतजीने चीनाखान लाइब्रेरी अल्मोड़ामें किया। तत्कालीन सुप्रसिद्ध समाचार-पत्र 'अल्मोड़ा अखबार' की व्यवस्थापक डिबेटिंग सोसाइटीमें भी उन्होंने भाषण देनेका अभ्यास किया। इसके सिवा स्कूलकी तार्किक-सभाओंमें उन्होंने बराबर भाग लिया। उनका यह अभ्यास स्कूल-जीवनसे कालेज-जीवन तथा कालेज-जीवनसे विश्वविद्यालय-जीवन तथा विश्वविद्यालय-जीवनसे वर्तमान-जीवन तक बराबर बढ़ता ही गया है। इलाहाबाद में जब आप विश्व-विद्यालयमें पढने गये, तो सौभाग्यसे आपको अपनी टक्करका दूसरा तार्किक पहलवान श्री सी० वाई० चिन्तामणि मिल गये। फिर क्या था ? 'अखाड़े' में नियमपूर्वक इन दोनों पहलवानोंकी कुश्ती होने लगी।

" वर्तमान पंत विद्यार्थी-जीवनके पंतके केवल विकसित

रूप हैं।" कहा जाता है कि पंतजी अब भी पुस्तकोंके अध्ययनमें रात्रि-जागरण करते हैं। यह आदत भी उनके विद्यार्थी-जीवनकी ही है। उनके अध्ययनकी यह विशेषता है कि चाहे वह संख्यामें अधिक पुस्तकें न पढ़ें, लेकिन पढ़ते गौरसे हैं। पुस्तक पढ़नेमें वे लेखकके साथ बड़ी आत्मीयता तथा सहानुभूति रखते हैं।

पंतजीके सहपाठियोंमें भी डा० कैलाशनाथ काटजू, आचार्य नरेन्द्रदेव, बा० शिवप्रशाद गुप्त, श्री सुन्दरलाल आदि थे। विश्व-विद्यालयके जीवनमें ही राजनीतिक घटनाओंका प्रभाव पंतजी पर पड़ने लग गया था। बंग-विच्छेदके अवसर पर जो स्वदेशी आन्दोलन चला था, उसने पंतजीमें राष्ट्रीयताकी भावना भर दी। सन् १९०५ में वह बनारस कांग्रेसमें सम्मिलित हुए थे। कहा जाता है कि माघ-मेलेके अवसर पर प्रयागमें पंतजीने भारतीय शकर पर एक व्याख्यान दिया था, जिससे यूनिवर्सिटीके अधिकारी आग-बबूला हो गये थे। मि० जेनिंग्सने परीक्षामें बैठनेसे उन्हें रोक दिया। भाग्यवश पंतजी गणितके प्रतिभाशाली छात्र थे। प्रो० काक्स तथा अन्य गण्यमान नागरिकोंके समझाने-बुझाने पर जेनिंग्सने अपना प्रति-बन्ध उठाया।

एल०-एल० बी० की परीक्षामें पंतजी प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। अतः लम्सडन मेडल प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया गया। पहले उन्होंने अपनी प्रैक्टिस अलमोड़ामें प्रारम्भ की, लेकिन अधिकारियों उनकी न बन सकी। अतः उन्होंने काशीपुरको अपना हेड क्वार्टर

बनाया । इसी स्थानसे उनके सार्वजनिक जीवनका सूत्रपात होता है । उदयराज हाई स्कूल उन्हींके प्रयत्नसे स्थापित हुआ ।

काशीपुरमें इनकी 'प्रैक्टिस' खासी अच्छी चली । कहा तो यह जाता है कि उनको उस समय हाईकोर्टमें वकालत करनेकी सलाह दी गई थी, लेकिन शायद तब पंतजी कुमाऊंके सार्वजनिक जीवनमें दिलचस्पी लेनेके कारण नैनीताल न छोड़ सके ।

पिछले महायुद्धके प्रारम्भ तक पंतजीका सार्वजनिक जीवनमें कोई खास स्थान नहीं था । उस समय वह 'वार जरनल' नामक युद्ध-पत्रकी प्रतियाँ बाँटते थे ! लेकिन धीरे-धीरे वह प्रकाशमें आ रहे थे । पंतजीको उस समय नरम-दली कहा जाता था, लेकिन काशीपुरकी कुमाऊं परिषद्‌ने उनके सार्वजनिक-जीवनकी धारामें महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया ।

सन् १६२० की कुमाऊं-परिषद्‌का अधिवेशन कुमाऊंके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा । कुली-बेगारकी बर्बर तथा अमानुषिक प्रथाके खिलाफ इस परिषद्‌ने बुलन्द आवाज उठाई थी, वह आवाज़ व्यर्थ न गई । इस प्रथाका अन्त हुआ और महात्माजीने इस रक्त-हीन क्रान्तिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की । इस बीच पंतजी सार्वजनिक जीवनमें द्रुत-वेगसे आगे चले जा रहे थे । उनके पिछले साथियोंने उन्हें अनुगामी लिबरल (Advanced Liberal) कह कर छोड़ दिया ।

जब मांटेगू-चेम्सफोर्ड-सुधार-योजनाके अनुसार पहले-पहल यू० पी० कौंसिलके लिए चुनाव हुआ तो पंतजी हार गये, लेकिन

दूसरी बार वह अपने कानूनी गुरु रायबहादुर पं० बद्रीदत्त जोशी-जीसे लड़े और उन्हें करारी शिकस्त दी। इसी बीच पं० मोतीलाल नेहरूजीसे वह नैनीतालमें मिले। पंतजीके धारा-प्रवाह व्याख्यानोंने सारे हाउसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वह स्वराज्य-पार्टीके नेता बनाये गये और इस कार्यमें उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली। उन्होंने कांग्रेस-क्षेत्र पर ही अपनी प्रतिभाका सिक्का नहीं बैठा दिया, बल्कि सरकार पर भी उनकी धाक जम गई। सरकार उन्हें अपनी ओर खींचना चाहती थी, किन्तु वह प्रलोभन में न पड़े। आगरा आराजी कानूनके रूपमें उनका यू० पी० कौंसिल का कार्य सुरक्षित रह गया।

सन् १६२१ के असहयोग-आन्दोलनमें पंतजी जेल नहीं गये थे, लेकिन सन् १६३० तक उन्होंने सार्वजनिक जीवनमें जो कार्य किया था, उसने उनकी आत्माको निर्भय तथा अनुशासन-प्रिय बना दिया था। साबरमतीके सन्तने रण-भेरी बजा दी थी। इस इम्तिहानमें पंतजी पास हुए, नमक-सत्याग्रहमें वह जेल गये, लेकिन इससे पहले ही पंतजी एक और अग्नि-परीक्षामें खरे उतर चुके थे। साइमन कमीशनके बायकाटके अवसर पर पं० जवाहरलालजी नेहरू के साथ लखनऊमें उनपर भी भीषण लाठी-प्रहार हुआ था। इस भीषण मारसे पंतजी कई महीनों तक चारपाई पर पड़े रहे। एक बार तो यह आशंका हुई थी कि कहीं वह जीवन-रोगका रूप न धारण कर ले। पंतजी फिर दुबारा जेल गये।

गत सत्याग्रह-आन्दोलनके बाद केन्द्रीय असेम्बलीके लिये जो

चुनाव हुए, उसमें कुमाऊँ-रुहेलखण्ड क्षेत्रसे पंतजी निर्विरोध चुने गये थे। उनकी वैधानिक-दक्षता तथा असाधारण मेधा-शक्तिको देखकर उनको असेम्बलीमें विरोधी-दलका डेपुटी-लीडर बनाया गया। असेम्बलीमें उन्होंने अपनी धाक जमा दी। उनकी बजट-स्पीचको सुनकर सब चकित रह गये थे। उस भाषणके बारेमें सबकी यही सम्मति थी कि स्व० गोखलेके बाद ऐसा युक्ति तथा तथ्य-पूर्ण भाषण किसीने नहीं दिया।

पंतजीके असेम्बली कार्य तथा कांग्रेस पार्लमेंटरी बोर्डके कार्यकी सफलताको देखकर उन्हें कांग्रेस कार्य-समितिका मेम्बर बना लिया गया। इसके बाद नये शासन-सुधारोंके अनुसार चुनाव हुए, पंतजी यू० पी० असेम्बलीके निर्विरोध सदस्य निर्वाचित हुए और अन्तमें उन्हें प्रधान मंत्री बनाया गया। फिर कांग्रेसकी आज्ञा पर उन्होंने अपने सहयोगियोंके साथ मंत्रिमण्डलको लात मार दी।

पंतजीके उप चरित्रकी एक विशेषता यह है कि वह शत्रुओंको मित्र बनानेमें अपना हित देखते हैं। यद्यपि वह काफी बड़े राजनीतिज्ञ हैं और सदा सतर्क होकर चलते हैं, लेकिन अपनी शालीनता, गम्भीरता और सहानुभूतिसे वह सबको अपनी ओर खींच लेते हैं तथा हाजिर जवाबी और शांतिमय धारणा शक्ति (cool mindedness) उनकी विशेषता है।

पंतजी पूरे गाँधीवादी हैं। उनमें धार्मिकताकी भावना प्रचुरमात्रामें मौजूद है। गाँधीवादी होनेके साथ ही वे उच्च कोटिके वैधानिक तथा पार्लमेंटेरियन हैं। पंतजी हिमालयकी-सी अपनी

गम्भीरता और शीलतासे दूसरेको नत-मस्तक कर सकते हैं, किन्तु वह जनताको आँधीको तरह नहीं बहा सकते, लेकिन यह बात भी माननी पड़ेगी कि आज युक्तप्रान्तके कोने-कोनेमें 'पंत' शब्द झोपड़ी-झोपड़ीमें पहुँच चुका है और पंतजी लोक-प्रिय नेता बन गये हैं।

पंतजीकी जीवन-गाथाका सार यह है कि वह स्वयं अपने प्रयत्न से इस स्थितिको पहुंचे हैं। उनकी आर्थिक तथा पारिवारिक स्थिति ऐसी नहीं रही है, जिसको ईर्ष्याके लायक कहा जा सके। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने पहले काफी रुपये पैदा किये थे, लेकिन लक्ष्मी चलायमान जो है! उनकी डायरीके पृष्ठोंको पढ़नेसे विदित होता है कि उन्होंने सबके प्रति विनय तथा दयालु होने, किसीसे अकारण न डरने, बिना बात पर झगड़ा मोल न लेने तथा सचाई और संयमसे जीवन व्यतीत करनेका निश्चय किया था। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने इसका भरसक पालन किया है।

कुमाऊंके इस कोहेनूर पर कुमाऊंको ही नहीं, सारे भारतको गर्व है।

—श्रीहरिकृष्ण त्रिवेदी
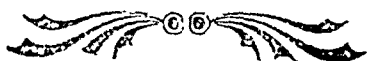
खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ

"अभी तक मैं किसी ऐसे मुसलमान व्यक्तिको नहीं जानता, जो पारदर्शी शुद्धता और अपने जीवनमें कठोर संयमके साथ-साथ अपनी कोमल भावनाओं और एक परमेश्वरमें जीवित विश्वास रखनेमें खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ से अधिक नहीं, तो कमसे कम उनके बराबर ही हो।" —श्रीमहादेव देसाई

सरहदी सूबेकी एक कहानी है—

खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँके राष्ट्रीय विचारोंसे प्रभावित होकर एक पठान अपने गाँवके लोगोंको अहिंसाका मतलब समझा रहा था। वह कह रहा था—हिन्दुस्तानका जो सबसे बड़ा आदमी गाँधी है, वह कहता है कि अगर कोई आदमी तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे, तो तुम उसकी ओर अपना दूसरा गाल भी करदो। हमारा 'खान-बादशाह' (खान अब्दुल गफ्फार खाँको सरहदी सूबेमें 'खान-बादशाह' और 'फ़ख्रे-इस्लाम' के नामसे पुकारा जाता है) भी ऐसा ही कहता है। इसलिए हम लोगोंको उसकी बात जरूर माननी चाहिये।

भीड़से एक नौजवान पठान चिल्ला उठा—कभी नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। हमको कोई मारेगा और हम उसको नहीं मारेगा? तुम्हारा 'खान-बादशाह' हिजड़ा है।

इतना सुनते ही भाषण देने वाले पठानके वदनमें आग लग गई और कूद कर वह उस नौजवानके पास पहुंच गया और कड़कती हुई आवाजमें वोला—'तूने 'खान-बादशाह' को गाली दी; तू उसकी बात नहीं मानेगा ?'

बात बढ़ गई, दोनोंमें हाथापाई शुरू हुई, लाठियां चलीं और दोनों खूनमें लथपथ हो गये।

× × × ×

सरहदी सूबेके ऐसे ही खूँख्वार बाशिन्दोंके 'खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ' बिना ताजके बादशाह हैं। जो पठान जाति अपनी आनके आगे हिमालयको भी उखाड़ फेंकनेमें पीछे पाँव रखना नहीं जानती, जिसको किसीने आँखें दिखाईं, तो उसने उसकी आँखें निकाल लीं और बचपनसे ही जिसके साथ लाठी और तीर-तरकश रहते हैं, वही क्रूर और बर्बर पठान जाति आज 'सरहदी गाँधी' के एक इशारे पर लाखोंकी तादादमें जलती हुई भट्टीमें कूद पड़नेके लिए तैयार रहती है।

छ फुट छ इञ्चका यह विशालकाय व्यक्ति, जिसे कुदरतने लड़ाईके मैदानमें तलवारोंकी झनझनाहटके बीच अपने भीम गर्जनसे दुश्मनोंके दिलमें आतंक पैदा करनेके लिए बनाया था, गाँधीजीके प्रभावसे सादगी और अहिंसाका अवतार बन गया। उसके शरीर-बल पर उसके आत्मबलने महान् विजय प्राप्त कर ली और उसकी ज्योतिसे सारा सीमा-प्रान्त प्रकाशित हो उठा।

'सरहदी गाँधी' अपनी क़ौमके लिए खुदाका फ़रिश्ता है और

उसकी एक अंगुलीके इशारे पर 'खुदाई खिदमतगारों' की बेशुमार फौजें अपनी जानको हथेली पर लेकर मौतके मुंहमें भी कूद पड़नेसे नहीं डरती।

खान अब्दुल गफ्फारखाँने पठानोंके दिलमें आज़ादी और अहिंसाकी वह ज्योति जगा दी है, जो हिन्दुस्तानके इतिहासमें एक अभूतपूर्व घटना है। भारतीय इतिहासमें पठानों और अंग्रेजोंकी लड़ाइयाँ कई बार हो चुकी हैं। दोनों पहले कई बार जोर-आजमाइश कर चुके हैं। पठान अपनी बहादुरी और ताकतके बलसे अंग्रेजोंको कई वार पहले नाकों चने चबवा चुके हैं। खान अब्दुल गफ्फार खाँके नेतृत्वमें भी सत्याग्रह-आन्दोलनके जमानेमें अंग्रेजी-शासनकी नृशंसतासे पठानोंने मोर्चा लिया. लेकिन पहले उनके हाथोंमें जहाँ चमचमाती तलवार रहा करती थी, वहाँ अब उनके पास एक मामूली छड़ी भी नहीं थी ; पहले जहाँ उनकी आँखोंमें दुश्मनोंके खूनकी प्यासकी लाली रहा करती थी, वहाँ अब उनमें क्षमा और आत्मोत्सर्गका गुलाबी रंग भरा हुआ था और यह सब 'सरहदी गाँधी'" के प्रभावका फल था—जैसे किसी जादूगरने अपनी छड़ीको घुमा कर शेरका सारा खूँख्वारपन क्षण भरमें गायब कर दिया हो।

अगर गाँधीजीको हम भारतीय स्वतंत्रताके महाभारतका युद्धिष्ठिर मानें, तो खान अब्दुल गफ्फारखाँ इस महाभारतके भीम हैं।

फ़ौलादके ढाँचेके भीतर मक्खनका दिल, स्वभावतः हिंसा-

परायण जातिके बीच अहिंसा और क्षमाका प्रतीक, 'सरहदी गाँधी' भारतीय स्वतंत्रताके इतिहासमें एक ही व्यक्ति है।

पेशावरसे बीस मीलकी दूरी पर चारसद्दा तहसीलमें उतमानजाई नामक एक गाँव है। इसी गाँवके जई कबीलेके प्रतिष्ठित खान मुहम्मद खाँके यहाँ इनका जन्म हुआ था। खान मुहम्मद खाँ एक निर्भीक योद्धा और ईश्वरभक्त पठान थे। सरकार और अपने कबीलेके लोगों पर इनकी बड़ी धाक थी। ये उदार विचारके व्यक्ति थे, इसीलिए अपने लोगोंके विरोध करने पर भी इन्होंने अपने दोनों पुत्र डाक्टर खान साहब और खान अब्दुल गफ्फार खाँ को पेशावर के मिशन स्कूलमें पढ़नेके लिए भेजा। वहाँसे मैट्रिक पास करनेके बाद बड़े भाईको डाक्टरी पढ़नेके लिए विलायत भेजा गया। वहाँसे डाक्टरी पास कर वे सरकारी फौजके डाक्टर नियुक्त हुए। लेकिन खान अब्दुल गफ्फार खाँ मैट्रिक पास नहीं कर सके और पिताकी बड़ी इच्छा होने पर भी, पारिवारिक झंझटोंके कारण इन्हें विलायत नहीं भेजा जा सका। पेशावरसे ये अलीगढ़ पढ़नेके लिए भेजे गये। यहीं इनके हृदयमें राष्ट्रीयताके अंकुर उगने प्रारम्भ हुए।

खान साहबके जीवनमें ये दिन बड़े ही अन्तर्द्वन्द्वके थे। एक ओर इनकी इच्छा सेनामें भरती होकर यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी ओर इन्हें प्रेरित करती थी, दूसरी ओर राष्ट्रीयताकी भावना इनके दिलमें क़ौम और मुल्ककी खिदमतकी ख्वाहिश जगा रही थी। एक बार इन्होंने मामूली गोरों द्वारा बड़े भारतीय अफ़-

सरोंके अपमानित होनेका दृश्य देखा। इस घटनासे इनके स्वाभिमानको गहरी ठेस लगी और इनके दिलमें आज़ादीकी आग और भी जोरोंसे भड़क उठी।

यूरोपीय युद्ध आया और उसमें जन और धनसे सरकारकी सहायताके पुरस्कार-स्वरूप भारतको मिला 'रौलेट ऐक्ट'। सारे देशमें इसका एक स्वरसे विरोध हुआ। महात्माजीके नेतृत्वमें हिन्दुस्तान भरमें सत्याग्रह-दिवस मनाया गया। पेशावरमें भी खान साहबके सभापतित्वमें एक विरोध-सभा हुई। सरकारके एक खैरख्वाह व्यक्तिका लड़का उसीके ख़िलाफ़ बग़ावत की आवाज़ बुलन्द करे, सरकार भला इसे कैसे बर्दाश्त कर सकती? खान साहबको गिरफ्तार करके छ महीनेकी सज़ा दे दी गई। इस घटना से बूढ़े बापके दिलको एक गहरा धक्का लगा और वह भी अपने वीर पुत्रके रास्ते पर चल पड़े। ९० वर्षके इन नौजवान-बूढ़ेके दिलमें भी सरकारके प्रति विद्रोहकी भावना जाग उठी और वह भी उसका विरोध करने लगे। सरकारने उन्हें भी गिरफ्तार करके जेलमें डाल दिया।

१९२० में नागपुर कांग्रेसमें शामिल होकर खान साहबने असहयोगकी दीक्षा ली और सारे सीमा प्रान्तमें इसके मंत्रका प्रचार करना शुरू किया। जगह-जगह सभायें करके इन्होंने पाठानोंको संगठित किया और १९२१ के सत्याग्रहके दिनोंमें पेशावरमें इन्होंने एक सभाका आयोजन किया, जिसमें एक लाखसे अधिक व्यक्ति आये थे। उस सभामें एक राष्ट्रीय पाठशाला खोलनेका विचार हुआ

और उसके अनुसार एक पाठशाला स्थापित भी हुई। लेकिन सीमाप्रान्तको सरकार राजनीतिक दृष्टिसे मोर्चेकी जगह मानती है; उस सूबेमें राजनीतिक उथल-पुथलको आने देना वह कैसे सह सकती थी! उसने खान साहबको गिरफ्तार कर लिया और तीन वर्षोंकी कड़ी कैदकी सजा दे दी। जेलमें इनके साथ बड़ी नृशंसतापूर्ण व्यवहार किया गया, लेकिन आत्मविजयी खान साहबने सभी अत्याचारोंको हँसते-हँसते सह लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि जेलके अन्य कैदी भी इनके प्रभावसे बदलने लगे। यह देखकर सरकारने इन्हें पंजाबकी एक जेलमें बदल दिया और वहाँ इनके ऊपर भारी अत्याचार होने शुरू हुए। इसी सजामें इनका फौलादी ढाँचा भी हिल गया और इनका शरीर कई बीमारियोंका अड्डा बन गया।

जेलसे छूटते ही खान साहबने 'खुदाई खिदमतगारों' का संगठन शुरू किया। पहले तो इसमें राष्ट्रीय पाठशालाके लोग ही शामिल हुए, लेकिन धीरे-धीरे इसके लाखों सदस्य हो गये। खान साहबने सैनिक अनुशासनका बहुत कठोर आदर्श रखा और इसकी वजह से 'खुदाई खिदमतगार' एक सुसंगठित और सुव्यवस्थित सेनाके रूपमें तैयार हो गया। जिन दिनों सारे देशमें हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यका बोलबाला था, उन दिनों सीमाप्रान्तका यह पारदर्शी नेता अपने अनुयायियोंको त्याग और तपस्याके विजय-मन्त्रसे दीक्षा दे रहा था। १९२९ में लाहौर-कांग्रेसके अवसर पर एक लाखकी अपनी यह अहिंसात्मक सेना इन्होंने कांग्रेसको समर्पित कर दी।

१९३० के तूफानी दिन आये। देशमें चारों ओर दमन और अत्याचारका नग्न-नृत्य शुरू हुआ। पेशावर और कोहाटमें शान्त-पर निश्चल सत्याग्रहियों पर गोलियोंकी बौछारें शुरू हुईं; लेकिन वे ही वीर पठान, जो जान देने और लेनेमें ज़रा भी नहीं हिचकते, सीना खोलकर बन्दूकोंके सामने डटे रहे। उनकी इस सहन-शीलताके सामने ब्रिटिश सरकारकी नृशंसता भी लज्जित हो गई। भारतीय स्वतन्त्रताके इतिहासमें पठानोंकी यह अपूर्व वीरता स्वर्णाक्षरोंमें लिखी जायगी। सारे हिन्दुस्तानके लिये उनकी वह सहन-शीलता गौरवकी वस्तु है।

१९३१ में सीमाप्रान्तके गवर्नरने अपने दरबारमें आनेके लिये खान-बन्धुओंको निमन्त्रित किया। लेकिन इन्होंने उस निमन्त्रण को अपने स्वाभिमानके विरुद्ध समझा और उसमें सम्मिलित होना अस्वीकार कर दिया। गवर्नरकी क्रोधाग्निमें आहुति पड़ी और वह धधक उठी। खान-परिवारके प्रायः सभी पुरुष कैद कर लिये गये और उन्हें अलग जेलोंमें रखा गया। दोनों भाइयोंको सीमाप्रान्तसे हजारों मील दूर बिहारके हजारीबाग जेलमें रखा गया। उधर जेल के दुर्व्यवहारोंसे असन्तुष्ट होकर डाक्टर खान साहबके पुत्र ओबेदुल्ला खाँने जेलमें अनशन प्रारम्भ कर दिया। ७८ दिनों तक अनशन करनेके बाद सरकारने उनकी शर्तें मान लीं तब उन्होंने अनशन भंग कर दिया।

गाँधी-इर्विन समझौतेके बाद खान-बन्धु रिहा कर दिये गये लेकिन सीमाप्रान्त और पंजाबमें इनके प्रवेश पर सरकारने प्रतिबन्ध

लगा दिया। इसके बाद ही बम्बईमें राजद्रोहात्मक भाषण देनेके अभि-योगमें खान अब्दुल गफ्फार खाँको फिर गिरफ्तार कर लिया गया। सज़ा भुगत चुकनेके बाद इन परसे सीमाप्रान्त और पंजाबमें प्रवेश-निषेधकी आज्ञा हटा ली गई और वर्षोंके बाद इन्होंने अपने प्यारे प्रान्तमें प्रवेश किया।

जब कांग्रेसने वैधानिक मार्गका अवलम्बन किया, तो सीमाप्रान्त में कांग्रेसी मंत्रिमंडल कायम हुआ और डाक्टर खान साहब उसके प्रधान मंत्री नियुक्त किये गये। खान अब्दुल गफ्फार खाँ प्रान्तके संगठन और अन्य रचनात्मक कार्योंमें संलग्न हो गये।

खान साहब एक अथक योद्धा हैं। कांग्रेसने जब कभी सरकार के विरुद्ध सक्रिय आन्दोलन छेड़ा, खान साहब उसमें सबसे आगे रहे। उनका जीवन एक सैनिकका जीवन है, जिसमें मार्गकी थकावटको दूर करनेके लिये आरामकी गुञ्जाइश नहीं।

* * * *

खान साहब एक सच्चे मुसलमान हैं। ज़िन्दगीमें इनकी नमाज़ शायद ही कभी नागा हुई हो। फिर भी इनका इस्लाम मुल्लाओंका इस्लाम नहीं।

यश और नामवरीसे इन्हें सख्त चिढ़ है। "मैं तो पैदायशी सिपाही हूं और मरते दम तक ऐसा ही बना रहूंगा"—ऐसी उक्तियाँ पेश करके कांग्रेसका सभापतित्व इन्होंने कई बार अस्वीकार कर दिया है।

इनके हृदयमें एक पठान-सुलभ वीरता और अत्याचारोंके प्रति

वज्रके समान दृढ़ता है, दूसरी ओर अपार करुणा और प्राणि-मात्रके लिए प्रेम भरा पड़ा है।

दुनियामें रहकर यह दुनियासे निर्लिप्त हैं। इनके चेहरे पर विरक्तिकी लकीरें खिंची रहती हैं।

इनका वजन २२० पौंड है। ये अधिकतर शाकाहारी हैं, लेकिन गोश्तसे परहेज़ नहीं रखते।

किसी स्टेशन पर जब कोई बड़ा नेता उतरता है, तो स्वागतके लिए आई हुई जनतामें चहल-पहल मच जाती है। कुछ व्यक्ति उसे मालायें पहनाते हैं, कुछ उसे सजी सजाई सवारीमें बिठलाते हैं और कुछ उसके सामान उतारनेमें मशगूल हो जाते हैं। लेकिन जब खान साहब कहीं उतरते हैं तो सामान उतारनेवालोंको बड़ी परेशानीका सामना करना पड़ता है। इनके उतर जानेके बाद जब वे यह समझकर कि फलाँ सामान उनका ही हो सकता है, उसे उतारनेकी कोशिश करते हैं, तो डब्बेमें बैठे हुए यात्री चिल्ला पड़ते हैं—हाँ, हाँ, वह तो मेरा सामान है। वे दौड़े हुए खान साहबके पास, यह पूछनेके लिये जाते हैं कि उनका सामान कौन-सा है। खान साहब हँसते हुए अपने पैरोंके पास पड़ी हुई एक छोटी स्ट्रैपदार बैगकी ओर इशारा कर देते हैं। क्या यही इनका पूरा सामान है? हाँ, यही बैग जिसमें एक पाजामा, एक कमीज और एक तौलियाके सिवा और कुछ भी नहीं रहता।

खान साहब जिसके मेहमान हुए वह पूछता है—आप कब खाना खाइयेगा? तुरत जबाव मिलता है—जब आप खाइये। मेजबान

फिर पूछता है—क्या खाइयेगा ? फौरन जवाब मिलता है—जो आप खाइये। खान साहबको खाने-पीनेका कोई शौक नहीं।

खान साहबको मज़ाक पसन्द हैं, लेकिन उनमें स्वयं मज़ाकका माद्दा नहीं है। उनका दिमाग दोपहरके सूर्यकी तरह प्रचण्ड और उत्तप्त है, सुबह-शामके सूरजकी तरह नहीं, जिसमें बादलोंकी रंगीन टुकड़ियाँ आस्मानमें दौड़ती रहती हैं। लेकिन, उनकी आत्मा ? उनकी आत्मा इस दुनियासे ऊपरकी चीज़ है और हिन्दुस्तानमें वह एक ही व्यक्ति हैं, जिनकी आत्मा महात्मा गाँधीके साथ बैठकर प्रार्थना करनेके उपयुक्त हो।

सरहदी सूबेकी अपरिमेय शक्तिका केन्द्र, खूनकी प्यासी पठान-जातिको अहिंसाकी दीक्षा देनेवाला फ़रिश्ता, और भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलनका एक महान सैनिक, खान अब्दुल गफ्फार खाँ, निस्सन्देह 'सरहदी गाँधी' कहलानेके उपयुक्त हैं।

—श्री नवकुमार एम० ए०।

आचार्य कृपलानी
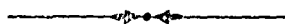
भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलनके इने-गिने संचालकोंमें आचार्य कृपलानीका एक खास स्थान है। इनका महत्व इस बातमें नहीं कि इन्होंने महात्मा गाँधी या जवाहरलालजीकी तरह स्वतंत्रताके आन्दोलनमें कोई नवीन क्रान्तिकारी विचार उपस्थित किया है, बल्कि इनकी महत्ता इस बातमें है कि १९१७ से आज तक ये गाँधीवादके प्रबल समर्थक और राष्ट्रीय अन्दोलनके अथक संचालक रहे हैं। बिहारमें जब महात्मा गाँधी पहले-पहल आये आये थे, तो उनके साथ सहयोग देनेवाले चन्द इनेगिने व्यक्तियोंमें आचार्य कृपलानी प्रमुख हैं। उसके बादसे तो इनका एक-एक मिनट देश-चिन्तनमें व्यतीत होता रहा है।

सिन्ध प्रान्तके एक गाँवमें इनका जन्म हुआ था और ग्रामीण वातावरणकी उच्छृङ्खलतामें ही इनका बचपन बीता। वतावरणका असर है कि आज भी कृपलानीजीके स्वभावमें काफ़ी अक्खड़पन है। १९०३ में मैट्रिकुलेशनकी परीक्षा पास कर ये बम्बईके विल्सन कालेजमें भरती हुए। अपनी प्रतिभा और मिलनसारीके बलसे ये तुरत ही वहाँके विद्यार्थियोंके नेता बन बैठे। उन्हीं दिनों किसी राजनीतिक मामलेको लेकर विल्सन कालेजके अधिकारियों और

विद्यार्थियोंमें संघर्ष छिड़ गया। विद्यार्थी कृपलानीने अपने सहपाठियोंको संगठित किया और अधिकारियोंके विरुद्ध हड़ताल शुरू हुई। इसका नतीजा वही हुआ जो ऐसी हालतमें अक्सर हुआ करता है—कृपलानीजीको कालेज छोड़ देनेकी आज्ञा की गई।

विल्सन कालेजसे हटकर इन्होंने सिन्ध कालेजमें नाम लिखाया, लेकिन जिसके हृदयमें स्वाभिमान और भारतीयताकी चिनगारी चमक रही हो, वैसे नवजवानको कहीं चैन मिल सकता है? १६०७ में सिन्ध कालेजमें एक जबर्दस्त हड़ताल हुई। वहाँके अंग्रेज प्रिन्सिपलने भारतीयोंके सम्बन्धमें कुछ अपमान-जनक बातें कहीं। इस पर कृपलानीजीके आत्म-सम्मानको गहरा धक्का लगा और उनके नेतृत्वमें विद्यार्थियोंके एक बड़े समूहने हड़ताल शुरू करदी। इसके फलस्वरूप कृपलानीजीको यहाँसे भी हटना पड़ा।

सिन्ध कालेजसे हटकर कृपलानीजी पूनाके फर्गुसन कालेजमें चले आये और वहाँसे इन्होंने १६०८ में बी० ए० की परीक्षा पास की। उसके बाद ही कराँचीके एक हाईस्कूलमें ये शिक्षक नियुक्त हुए। लेकिन वहाँ भी अपनी सिद्धान्त-प्रियताके कारण ये अधिक दिनों तक नहीं टिक सके। वहाँ जानेके एक महीना बाद ही एक सरकारी सर्कुलर आया जिसके अनुसार प्रत्येक शिक्षकको सरकारके प्रति स्वामि-भक्तिकी पतिज्ञा करनी पड़ती थी। कृपलानीजीने तुरत इस्तीफा दे दिया और हैदराबाद जा पहुंचे। वहाँ भी एक हाईस्कूलमें शिक्षक नियुक्त हुए, लेकिन दो महीने बाद ही अधिकारियोंसे अनबन हो जानेके कारण ये वहाँसे भी चलते बने।

हैदराबादसे लौटकर ये सक्खरके म्युनिपल हाईस्कूलमें दो वर्षों तक शिक्षक रहे। यहीं रहकर १९११ में इन्होंने एम० ए० की परीक्षा पास की। उसके बाद ही ये मुजफ्फरपुर (बिहार) के कालेजमें प्रोफेसर नियुक्त हुए और यहींसे इनका क्रियात्मक राजनीतिक जीवन प्रारम्भ होता है।

'नौजवानों पर ही राष्ट्रकी सबसे बड़ी जिम्मेवारी रहती है'—इस विचारके हामी कृपलानीजी युवकोंसे दूर रहना कब पसन्द कर सकते थे ? वे विद्यार्थियोंसे खूब घुल-मिल कर रहने लगे। अपने उग्र विचारों और स्पष्टवादिताके कारण नौजवान विद्यार्थियोंके ये बहुत शीघ्र प्रेम-पात्र बन गये। भला अधिकारियोंको यह बात कब बर्दाश्त होती ? इन पर सन्देह किया जाने लगा कि ये क्रान्तिकारी दलके कार्यकर्त्ता हैं और छिपे-छिपे विद्यार्थियोंको क्रान्तिके लिये उभाड़ते रहते हैं। उन्हीं दिनों चम्पारनमें निलहे गोरोंके अत्याचारोंकी जाँचके लिये गाँधीजी मुज़फ्फरपुर पहुंचे। आचार्य कृपलानीने उन्हें अपने यहाँ कालेजके होस्टलमें ठहराया। अधिकारीवर्ग इससे आगबबूला हो उठा और इससे तुरत इस्तीफ़ा देनेको कहा गया। इस्तीफा देकर ये गाँधीजीके साथ चम्पारनके आन्दोलनमें जा डटे। उन्हीं दिनों बहुत तेज गाड़ी चलानेके जुर्ममें इन्हें १५ दिनोंके लिये जेल भी जाना पड़ा था।

चम्पारन-सत्याग्रह समाप्त होने पर ये गाँधीजीके साथ खेरा (गुजरात) चले गये और वहाँ गाँधीजी और सरदार पटेलके साथ लगान-बन्दी आन्दोलनमें सहयोग देते रहे।

१९१८ में गाँधीजीने यूरोपीय महायुद्धके अवसर पर ब्रिटिश सरकारको भारतीय सेना और धनसे मदद देनेका विचार उपस्थित किया तो कृपलानीजीने उनका विरोध किया और फलतः ये उनसे अलग हो गये। उसके वाद ये सिन्धके नेशनल कालेजमें अध्यापक हुए; लेकिन छै महीने वाद वहाँसे हटकर पं० मदनमोहन मालवीयके प्राइवेट-सेक्रेटरी नियुक्त हुए। उसी साल मालवीयजी कांग्रेसके दिल्ली-अधिवेशनके सभापति हुए थे।

एक वर्ष तक मालवीयजीके प्राइवेट-सेक्रेटरी रहकर १९१९ में कृपलानीजी हिन्दू-विश्वविद्यालयमें इतिहास और राजनीतिके अध्यापक नियुक्त हुए। लेकिन यहाँ भी ये अधिक दिनों तक नहीं रह सके। एक साल वाद ही १९२० में सत्याग्रह-आन्दोलनका सूत्रपात हुआ और प्रोफेसरीको तिलाञ्जलि देकर अपने तीस विद्यार्थियोंके साथ कृपलानीजी यूनिवर्सिटीसे निकल पड़े। काशीमें ही एक मकान किराये पर लिया और वहींसे गाँवोंमें सुधार और शिक्षाके प्रचारके लिये इन्होंने गाँधी आश्रमकी स्थापना की।

यूनिवर्सिटी छोड़नेके समय इन विद्यार्थियों और कृपलानीजी सभीके पास मिलाकर कुल तीस रुपये थे। आश्रमकी व्यवस्थामें बड़ी कठिनाई आ खड़ी हुई; यहाँ तक कि आश्रमवासियोंको भोजनके भी लाले पड़ने लगे। इसी समय स्कूलों और कालेजोंसे नाम कटवा-कटवा कर लड़के निकलने लगे। कृपलानीजीने देखा कि स्कूलों और कालेजोंके अपरिपक्व विद्यार्थी देश-प्रेमकी हवामें वाहर तो चले आते हैं, लेकिन उनके सामने राजनीति और देश-सेवाका

कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं होता। ऐसे लोगोंकी शिक्षा-दीक्षाके लिये इन्होंने एक राष्ट्रीय विद्यालयकी स्थापना कर दी। एक वर्ष बाद जब बाबू भगवान दास और श्री शिवप्रसाद गुप्तने काशी विद्यापीठकी स्थापना की तो राष्ट्रीय विद्यालय भी विद्यापीठके अन्तर्गत कर दिया गया। कृपलानीजी विद्यापीठके उपाध्यक्ष बनाये गये।

१९२१ में प्रिंस-आफ-वेल्सके भारतमें आगमनके विरोधमें भाषण देने और जनताको उनके स्वागतका बहिष्कार करनेके लिये उत्तेजित करनेके अपराधमें कृपलानीजीको गिरफ्तार कर लिया गया और छै महीनेकीसजा दे दी गई। जेलसे छूटनेपर इन्होंने अपना सारा समय गाँधी-आश्रमकी शाखाएँ खोलने और गाँवोंमें घूम-घूम कर खादी और शिक्षाके प्रचारमें लगाना शुरू किया। १९२२ के अन्त में इन्हें गुजरात-विद्यापीठका अध्यक्ष बनाया गया और उस पर पाँच वर्षों तक रहकर इन्होंने विद्यापीठको एक अपूर्व संस्था बना दिया। छुट्टियोंमें ये युक्त-प्रान्त चले आते और अपने स्थापित किये हुए गाँधी-आश्रमकी देख-भाल कर जाते थे। गाँव-गाँवमें खादीकी कताई-बुनाईके लिये केन्द्र खुलने लगे और उनकी बिक्रीके लिये शहरोंमें खादी-भण्डार खोले जाने लगे। इस समय युक्त-प्रान्त, दिल्ली और मध्यप्रान्तमें खादी-प्रचारका लगभग सभी काम गाँधी-आश्रमके तत्वावधानमें होने लगा और यह आश्रम हिन्दुस्तानकी प्रमुख खादी-प्रचार संस्थाओंमें गिना जाने लगा।

१९२१ में ही कांग्रेसके स्पेशल अधिवेशनके बाद कृपलानीजीने महात्मा गाँधी और अली-बन्धुओंके साथ भारतव्यापी दौरा

किया। गुजरात विद्यापीठमें रहते हुए भी १९२५ में इन्होंने महात्मा गाँधीके साथ बंगालका दौरा किया और १९२६ में सारे संयुक्त-प्रान्तका और १९३० सत्याग्रह-आन्दोलनके शुरू होने पर आचार्य कृपलानीको कानपुरमें राजद्रोहात्मक भाषण देनेके अपराधमें गिरफ्तार कर लिया गया और इन्हें एक सालकी सज़ा दे दी गई।

जेलसे छूट कर १९३१ में कृपलानीजी और फादर एलविनने अखिल-भारतीय खादी-प्रचार दौरा किया। १९३२ में ये पुनः गिरफ्तार कर लिये गये और इस वार छै महीनेके लिये जेल भेज दिये गये। इस वार जेलसे छूटनेके तीन दिन वाद ही पटना स्टेशन पर ये फिर गिरफ्तार कर लिये गये। इस वार इन्हें छै महीनेकी सजा हुई और ये हज़ारीवाग जेलमें रखे गये।

१९३४ में फर्रुखावादमें प्रवेश-निषेधकी आज्ञा भंग करनेके कारण ये फिर गिरफ्तार किये गये, लेकिन पन्द्रह दिन वाद ही इन्हें रिहा कर दिया गया। रिहाई होते ही ये विहारके भूकम्प-पीड़ितों की सहायताको मुजफ्फरपुर जा डटे। उसी साल इन्हें अखिल-भारतीय-कांग्रेसका मंत्री निर्वाचित किया गया और आज तक ये उस पदको सफलतापूर्वक सुशोभित कर रहे हैं।

वाहरसे आचार्य कृपलानीका जीवन नीरस और शुष्क है, लेकिन उनका हृदय वहुत ही भावुक और कल्पना-प्रिय है।

कुछ लोग कृपलानीजीको दवंग कहा करते हैं। उनकी वातें कुछ अक्खड़पन लिये हुए होती भी हैं। लेकिन यह अक्खड़पन

उनकी निर्भीकता और स्पष्ट-वादिताका फल है न कि उनके स्वभाव के कडुवेपनका।

कृपलानीजी पतले-दुबले और इकहरे बदनके हैं। चेहरे पर अब झुर्रियोंका जाल फैलने लगा है और बालोंमें सफेदी आ चली है। इन झुर्रियों और सफेद बालोंमें यह स्पष्ट दीख पड़ता है कि ज्ञान की पिपासाको दबा कर इस 'आचार्य' ने कितनी दूर तक त्याग और कठिनताके जीवनको अपनाया है।

—श्री नवकुमार एम० ए०।

श्री भूलाभाई देसाई
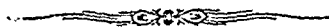
१९३१ के तूफानी दिन ! एक ओर सारा राष्ट्र सत्याग्रह-आन्दोलनकी प्रचण्ड दुपहरीमें सरपट दौड़ रहा था और दूसरी ओर देशके क्षितिज पर विषादके काले बादल घिरते आ रहे थे। यह काली घटा घिरते-घिरते एक दिन घनीभूत हो उठी और उसी दिन कांग्रेसका एक महान् शक्तिशाली स्तम्भ सदाके लिये टूट गया। पं० मोतीलाल नेहरूके देहावसानसे सारा राष्ट्र विह्वल हो उठा। लेकिन लड़ाईके मैदानमें सैनिकोंको रुक कर अपने सेनापतिके लिये मातम मनानेका अवसर कहाँ ? युद्ध चलता रहा और अपने हृदयके व्रण को तिरंगे झंडेसे बाँध कर, सैनिक आगे बढ़ते चले। उसी समय उन्होंने देखा, बम्बईके वकालतखानेसे निकल कर उनके बीच एक दूसरा मोतीलाल उन्हें आगे बढ़नेके लिये प्रोत्साहित कर रहा है। सैनिकोंका हृदय उछल पड़ा और मस्तीमें आकर उन्होंने अपने इस नये सेनापतिको कन्धे पर उठा लिया और चिल्ला पड़े—भूलाभाई ज़िन्दाबाद !

१८७७ के १३ अक्टूबरको बारदोलीके पास ही सूरत जिलेके बुलसर नामक स्थानमें भूलाभाईका जन्म हुआ था। अनाविल ब्राह्मण वंश अपनी विद्वत्ता, संस्कृति और ज्ञानके लिये प्रसिद्ध है।

भूलाभाई उसी ब्राह्मण वंशके एक सम्भ्रान्त सरकारी वकीलके घर पैदा हुए थे। बचपनकी शिक्षा स्थानीय स्कूलमें समाप्त कर भूलाभाई बम्बईके एलफिन्सटन कालेजमें भरती हुए और वहाँसे प्रथम श्रेणीमें आनर्सके साथ बी० ए० की परीक्षा पास की। इनकी प्रतिभा और विद्वत्ताके कारण सरकारकी ओरसे विलायत जाकर आइ० सी० एस० की परीक्षामें बैठनेके लिये इन्हें वजीफ़ा दिया गया; लेकिन पारिवारिक झंझटोंके कारण इन्हे उसे अस्वीकार करना पड़ा। फलतः इन्होंने एम० ए० पास किया और अहमदाबादके गुजरात कालेजमें प्रोफेसर नियुक्त हो गये। दो वर्षों तक वे उस पद पर रहे। लेकिन वकालतकी प्रवृत्ति तो इन्हें पैतृक विरासतमें ही मिली थी, इसीलिये इन दो वर्षोंमें वकालतकी परीक्षा पास कर, इन्होंने प्रोफेसरीसे इस्तीफा देकर वम्बई हाईकोर्टमें वकालत शुरू कर दी।

उन दिनों वम्बई-हाईकोर्ट अंग्रेज़ वकीलों और वैरिस्टरों की संरक्षित भूमि-सा ही था। किसी भारतीय वकीलके लिए उसमें जगह बनाना बहुत मुश्किल काम था; लेकिन अपनी अलौकिक प्रतिभा और कानूनी ज्ञानके बल पर भूलाभाई कुछ ही दिनोंमें चमक उठे; इनकी ख्याति सारे प्रान्तसे फैल गई और इनके घर पर रुपये बरसने लगे। फिर तो वम्बई ऐसे शहरमें जहाँ बड़े बड़े वाणिज्य-व्यवसायोंने जीवनके और क्षेत्रों पर ग्रहण लगा रखा है, 'मालाबार हिल' पर भूलाभाईकी भी एक आली कोठी तैयार हो गई। इनकी प्रैक्टिस दिन-दूनी बढ़ती गई और धीरे

धीरे बम्बईसे बाहर भी सुदूर प्रान्तोंमें इनकी ख्याति फैलने लगी। इनके साथियोंमें श्री मुहम्मद अली जिन्ना भी काफी प्रसिद्ध वकील थे।

जब होम-रूल आन्दोलनका श्रीमती एनी वेसेन्टने श्रीगणेश किया तो श्रीयुत जिन्नाके सम्पर्कमें भूलाभाईने भी उस आन्दोलनमें सहयोग दिया। फिर उसके बाद रौलेट ऐक्ट के विरोधमें भी भूलाभाईने श्रीजिन्नाके साथ आन्दोलनमें भाग लिया। इन आन्दोलनोंमें भाग लेनेके कारण ये गाँधीजीके सम्पर्कमें आ गये और फिर पीछे सरदार पटेलसे भी इनका संबंध हो गया। १९२० के सत्याग्रह आन्दोलनके दिनोंमें भूलाभाई कांग्रेसके अन्दर सक्रिय रूपसे सम्मिलित नहीं हो सके, लेकिन देशकी आज़ादीकी आग इनके दिलमें कभी बुझने नहीं पाई।

आगे चल कर सरदार पटेलने बारडोलीमें किसान-सत्याग्रहका सूत्र-पात किया। भूलाभाईके घरके बहुत पास होनेके कारण बारडोलीके किसानोंकी करुण कथा इन्हें क्षुब्ध करने लगी और इनका मन उनकी सेवाके लिए इन्हें बार-बार प्रेरित करने लगा। लेकिन, सक्रिय रूपसे सत्याग्रहमें भाग लेनेकी अपेक्षा इन्होंने अपने कानूनी ज्ञानके बलसे उनकी सहायता करनेका निश्चय किया और फलस्वरूप अपने समूल्य समयका अधिकांश भाग बारडोलीके पीड़ित किसानोंको मुफ्त कानूनी सलाह-मशविरेमें देने लगे। उन किसानों की अवस्थाकी जाँचके लिए सरकारकी ओरसे दो बार स्पेशल कमिटियाँ बैठाई गईं। भूलाभाईने इन कमीटियोंके सामने किसानों

की ओरसे जैसी जोरदार बहस की वह भारतीय कानूनी बहसके इतिहासमें एक महत्वपूर्ण चीज है। बहुत लोगोंका तो यहाँ तक कहना है कि अगर बारडोली सत्याग्रहकी सफलताका श्रेय सरदार पटेलकी अद्भुत् संगठन-शक्तिको है तो उस सफलताको लानेवाली 'ब्रुमूसफील्ड रिपोर्ट' को सरकारसे दिलवानेका श्रेय भूलाभाई देसाई की अपूर्व कानूनी क्षमता को है।

वकालतके जीवनमें भूलाभाईके सामने—जानें—कितने प्रलोभन आये, लेकिन उन्होंने सबका तिरस्कार किया। १९२३ में इन्हें बम्बई गवर्नरने अपनी एक्जेक्युटिव कौंसिलमें जगह देना चाहा; लेकिन इन्होंने बहुत नम्रताके साथ उसे अस्वीकार कर दिया। उन्हीं दिनों इन्हें कई बार बम्बई-हाईकोर्टके जजका पद स्वीकार करनेको कहा गया; लेकिन इन्होंने उसे भी अस्वीकार कर दिया। कुछ दिन बाद इन पर भारत-सरकारके कानूनी सदस्यके पद पर रहनेके लिए जोर डाला जाने लगा; लेकिन इन्होंने उसे भी नामंजूर कर दिया। १९२६ से इनके विचारोंमें कुछ परिवर्तन हुआ और ये बम्बई प्रान्तके एडवोकेट जेनरल बनाये गये।

अन्तमें सन् १९३० का सत्याग्रह आया। भूलाभाईके हृदयमें बारडोलीके दलित किसानोंकी अवस्थाको देखकर जो विद्रोहकी ज्वाला उठी थी, वह सत्याग्रहकी हवासे और भी प्रज्वलित हो उठी। उनका 'मालाबार हिल' का आलीशान मकान जेलोंसे छूटे हुए और जानेकी तैयारीमें लगे हुए देश-सेवकोंका एक शिविर-सा बन गया। वास्तवमें बम्बई-प्रान्तके कांग्रेस-आन्दोलनके कुल खर्चकी पूरी

जिम्मेदारी भूलाभाई देसाई पर ही थी, लेकिन सरकार यह कब देख सकती थी कि भूलाभाई जैसा व्यक्ति इस तरह कांग्रेसकी सहायता करे। सन् १९३२ की २५ जुलाईको इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्सके अनुसार इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और एक सालकी कैद और १०,००० रुपये जुर्मानेकी सजा दे दी गई। सन् १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलनमें इससे अधिक जुर्माना और किसी व्यक्तिको नहीं हुआ था।

जेलसे छूटनेके वाद भूलाभाईने देखा कि गाँधी-इर्विन समझौतेके कारण सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित कर दिया गया है। उसके वाद १९३४ से जव कांग्रेसके अन्दर वैधानिक प्रवृत्ति वढ़ने लगी, भूलाभाई इस दलके नेता वन गये और सच पूछा जाय, तो जिस तरह गया-कांग्रेसमें पं० मोतीलालजीने कांग्रेसके अन्दर वैधानिक प्रवृत्तिका नेतृत्व किया था और आगे चल कर केन्द्रीय असेम्वलीमें कांग्रेसी दलके नेता वने थे, उसी तरह १९३४ में भूलाभाईने कांग्रेसके अन्दर वैधानिक प्रवृत्तिका नेतृत्व किया और १९३७ में केन्द्रीय असेम्वलीमें कांग्रेसी दलके नेता वने। आप कांग्रेसकी कार्य-समितिके एक प्रमुख सदस्य भी हैं।

भूलाभाई औसत क़दके हैं; उनके वालोंमें सफेदी आगई है। उनके चेहरे पर सौजन्य और शिष्टताकी झलक है; उनकी गड्ढेदार ठुड्डीमें उनके विचारोंकी गहराई झलकती है। उनका स्वर कोमल, स्पष्ट और प्रिय है। उनके व्यवहारसे शराफ़त और हृदयकी महानता टपकती रहती है।

भूलाभाईकी वाणी काव्यमयी होती है, उनके वाद-विवाद ज़ोर-दार और तीक्ष्ण होते हैं। उनके मस्तिष्कमें विचारोंका संघर्ष मचा रहता है, लेकिन उनकी वाणीमें वह संघर्ष नहीं आने पाता। अपने श्रोताओंको मुग्ध कर डालनेकी कलामें वह सिद्ध-हस्त हैं। उनके कथनमें शब्द-जाल नहीं, स्पष्टता रहती है। उनको ओठों पर खेलनेवाली मुस्कराहट उनकी सहृदयताकी पहचान है। विज्ञापनवाज़ी और तड़क-भड़कसे उन्हें नफरत है। उनके राजनीतिक विचारोंमें उग्रता नहीं। इस बातसे उन्हें अस्वीकृति नहीं कि उन्होंने बर्नार्डशाकी 'इण्टेलिजेण्ट विमेन्स गाइड टू कैपिटैलिज्म' एण्ड 'सोशलिज्म'का अध्ययन किया है; लेकिन साम्यवादियों द्वारा खींचे गये भविष्यके रंगीन चित्रोंमें उनकी आस्था नहीं।

पं० मोतीलाल नेहरू और भूलाभाईमें महान् अन्तर है। दोनों अपने युगके भारत-प्रसिद्ध वकील थे; लेकिन सिर्फ वकालत ही तो सब कुछ नहीं है। मोतीलालका व्यक्तित्व आतंककारी था, भूलाभाईके व्यक्तित्वमें सहृदयताकी छाप है। मोतीलालजीके फैले हुए जबड़ोंसे राजकीय सत्ता झलकती थी, भूलाभाई देसाईकी गड्ढेदार ठुड्डीसे उनकी गम्भीरता टपकती है। मोतीलालजीका हृदय पत्थर की तरह कड़ा था—कांग्रेसमें आनेके पहले वे बादशाहकी तरह रहते थे; देशके लिये सब कुछ दान कर देने पर भी वे दिलके बादशाह बने रहे। भूलाभाई देसाईमें मोतीलालजीके हृदयकी दृढ़ता नहीं। मोतीलालजी केन्द्रीय असेम्बलीमें विरोध करते-करते—ऐसा विरोध, जिसमें अल्पसंख्यक होनेके कारण कांग्रेसकी हार निश्चित थी—ऊब-से गये थे। भूलाभाईको इस विरोध और बार-बारकी हारमें रस मिलता है। —श्रीनवकुमार एम० ए०।

डा० पट्टाभि सीतारामय्या

"Here is a man born in poverty, self-built, content to be the servant of the country, who hates a procession, a photograph, an address and a garland."

अर्थात् "यही वह व्यक्ति है, जो गरीबीकी गोदमें जन्मा, जिसने अपने-आप अपना निर्माण किया, मुल्ककी खिदमत करनेमें ही जिसे सुख-सन्तोष मिलता है और जिसे नफरत है—जुलूससे, फोटोग्राफ देनेसे, मान-पत्र पानेसे और फूलोंकी मालासे।"

यदि डा० वी० पट्टाभि सीतारामय्याका जीवन-वृत्तान्त एकदम संक्षेपमें लिखा जाय, तो उनके बारेमें ऊपरकी पंक्तियाँ ही लिख देना काफी है। ये पंक्तियाँ साफ शब्दोंमें घोषित करती हैं कि डा० पट्टाभि क्या हैं, उनका निर्माण कैसे हुआ और देशकी सेवाके लिए उनके दिलमें कितनी निःस्वार्थ भावनायें हैं।

डा० पट्टाभिका सारा जीवन बड़ा ही दिलचस्प और रोमांचकारी घटनाओंसे भरा है। सिर पर शरद्-ऋतुमें फूलनेवाले काशकी तरह सफेद, पर—छोटे-छोटे केश, सिरका आधा भाग गंजा, चौड़ा ललाट—जिसमें दर्पण-सी चमचमाहट, घनी सफेद मूँछें, स्वभावसे अत्यन्त उदार,

मिलनसार, मृदुभाषी, ज़िन्दादिलीमें बस एक ही, करीब आधी दर्जन भाषाओंके प्रकाण्ड पण्डित और भाषा-विज्ञान (Philology) के आचार्य, उच्चकोटिके विचारक और हमेशा मुल्ककी आज़ादीके लिए सर्वस्व स्वाहा करनेकी आकांक्षा रखनेवाले, साठ सालकी उम्रमें भी बीस सालके नौजवानका-सा उत्साह, उमंग और साहस तथा छोटे-से-छोटे काम करनेमें भी आनन्द अनुभव करनेकी प्रवृत्ति—ये ही गुण हैं, जिनका दर्शन हम डा० पट्टाभिमें करते हैं।

डा० पट्टाभिकी पैदाइश दक्षिण-भारतके आन्ध्र प्रान्तके किस्ना जिलेके एक छोटेसे गाँवके एक ब्राह्मण-परिवारमें सन् १८८० ई० के लगभग हुई। ये सिर्फ दो सालके थे कि इनके पिता संसार-चक्रसे मुक्ति पाकर सुरधाम सिधार गये और अपने इस भावी नेता-पुत्रकी परीक्षाके लिए छोड़ गये—सारा परिवार और उसपर कर्ज तथा दरिद्रताका असह्य बोझ! इस गरीबीमें ही बालक-पट्टाभिने गाँवके पड़ोसके एक स्कूलमें लिखना-पढ़ना शुरू किया। इनके अपने ही शब्दोंमें—ये धोतीके अभावमें अँगोछा पहनकर अर्द्धनग्न फकीर बालकके भेषमें पाठशाला जाया करते थे। कष्टोंके समुद्रमें तैरते-उतराते किसी भाँति सन् १८९९ में इन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास कर ली और उसके बाद अपनी स्वाभाविक रुचिके अनुसार डाक्टरीकी डिग्री (एम० बी०, सी० एम०) की तैयारी करने लगे। लगातार छः सालके श्रमके बाद सन् १९०५ में ये पूरे डाक्टर बन गये और सन् १९०६ से १९१६ तक मसलीपट्टममें डाक्टरी करते रहे। इस अरसेमें इन्होंने इतनी सम्पत्ति उपार्जित

की कि कर्जसे उद्धार पाया, घर-द्वार सँभाले और अपने भावी जीवनके लिए कुछ संचय भी कर लिया। आपके दो सुपुत्र हैं, जिन्हें स्कूल, कालेजकी शिक्षा नहीं दी गई है, क्योंकि डाक्टरजीका खयाल है कि—"ये मौजूदा स्कूल-कालेज तो गुलामखाने हैं।" बड़े लड़के, जिनकी उम्र ३० सालकी है, मसलीपट्टममें अवैतनिक रूपमें को-ओपरेटिव सोसाइटीका काम करते हैं और छोटे साहब, जिनकी उम्र १८ सालसे ज्यादा नहीं, अभी अध्ययन कर रहे हैं।

डा० पट्टाभिके दिलमें देश-प्रेमका भाव सन् १९०६ में बङ्गालके स्वदेशी-आन्दोलनके कारण ही जागा और उसी समय इन्होंने मसलीपट्टममें आन्ध्र कला-शाला-नामक संस्थाकी नींव डाल दी, जो उत्तरोत्तर उन्नतिशील है। जीवनमें सर्वप्रथम ये भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अधिवेशनमें शरीक हुए थे सन् १९०८ में। सन् १९१६ में इनके देश-प्रेमने इन्हें अपनी प्रैक्टिस सदाके लिये छोड़कर मुल्ककी खिदमतकी ओर आकृष्ट किया और तबसे आज तक ये कांग्रेसके साधारण सदस्य ही नहीं, वल्कि अ० भा० कांग्रेस कमिटीके सदस्य चने हुए हैं। इसी कट्टरताके कारण सन् १९२९ ई० ये कांग्रेसकी कार्य-समितिके सदस्य बनाये गये। एक सालके अलावा—सम्भवतः सन् १९३५ का साल—जब कि इन्होंने कांग्रेसकी पद-ग्रहण की नीतिके खिलाफ जोरदार आवाज़ उठाई थी, फलतः कार्य-समितिमें नहीं रखे गये थे—ये तबसे अब तक उस पदको अलंकृत करते आ रहे हैं।

सन् १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलनमें इन्हें पहले पहल १ सालकी

कड़ी कैदकी सजा दी गई थी। मीयाद पूरी कर बाहर आये ही थे कि सन् १९३२ में दो साल कैद और ११००) रु० जुर्मानेकी सजाका तोहफा तैयार था और इस पर तुर्रा यह कि इन्हें 'सी' क्लासका कैदी बनाया गया, पर बादमें ये 'ए' क्लासमें रखे गये। सन् १९३३ के अन्तमें छूटते ही फिर छः मास कैद और ५००) रु० जुर्मानेकी सजा मिली।

डा० पट्टाभिके कई रूप हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन यों है—कट्टर कांग्रेस-भक्तके रूपमें ऊपर लिखा जा चुका है। देशी राज्य-प्रजा-हितैषीके रूपका पता उन सभीको होगा, जो यह जानते हैं कि देशी रियासतोंकी प्रजाके लिए डाक्टरजीने कितनी त्याग-तपस्या की है और अ० भा० देशी राज्य-प्रजा-परिषदके सभापति भी रहे हैं। समाज-सुधारकके रूपमें इन्हें सारा आन्ध्र प्रान्त जानता है, जहां रात-दिन ये सफाई-शिक्षाका प्रचार करते और स्वास्थ्यकी तालीम देते रहते हैं। पत्रकार डा० पट्टाभि वही हैं, जिन्होंने १९१९ में ही 'जन्मभूमि' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक स्वयमेव प्रकाशित किया था, जो घाटेका सौदा होकर भी लगातार एक युग तक—१९३० तक एक ढंग पर शानसे निकलता रहा, पर अन्तमें जिसका प्रकाशन स्थगित कर देना पड़ा।

और सबसे अन्तिम जो रूप इनका है, वह है प्रकाण्ड पण्डित, स्पष्ट विचारक और उद्भट लेखकका रूप। हिन्दुस्तानके विचारकों और पण्डितोंकी पहली श्रेणीमें डा० पट्टाभि सीतारामय्याको हम पाते हैं। लिखनेकी प्रवृत्ति इनमें बचपनसे ही है। अब तक इनकी दस

अंग्रेजी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 'कांग्रेसका इतिहास' 'इकौनोमिक कंक्वेस्ट आव इण्डिया' (भारतकी आर्थिक विजय), इण्डियन कंस्टीट्यूशन (भारतीय विधान), गाँधीज्म एण्ड सोशलिज्म (गाँधीवाद और साम्यवाद), नेशनल एड्यूकेशन (राष्ट्रीय-शिक्षा), इण्डियन नेशनलिज्म (भारतीय राष्ट्रीयता)—ये पुस्तकें मुख्य हैं।

ये लिखते हैं, किन्तु लिखना इनका व्यवसाय नहीं। उस दिन बातचीतके सिलसिलेमें इन्होंने कहा था कि 'हम ब्राह्मण हैं, ज्ञानका विक्रय हमारे लिए उचित नहीं। हमें अपने ज्ञानका उपयोग संसारमें शिक्षा-ज्योति फैलानेके लिए करना चाहिये।' जिस 'कांग्रेसके इतिहास' का अनुवाद भारतकी अनेक भाषाओंमें किया जा चुका है और जो इतनी लोकप्रिय पुस्तक है, उसके लिए भी डा० पट्टाभिने पारिश्रमिक के रूपमें एक कौड़ी भी नहीं ली थी। साथ ही अपने लिये उसकी जो प्रति ली, उसकी कीमत दे दी थी। वस्तुतः इन्होंने अपने ऐसे कार्यों द्वारा ब्राह्मणोंकी सहज त्याग-वृत्तिका प्रशंसनीय परिचय दिया है।

डा० पट्टाभिने अपना निर्माण घोर गरीबीमें किया है, इसलिये उनमें गरीबी और गरीबोंके लिए सहृदयता होना स्वाभाविक है। वे बड़े ही विनम्र और मृदुभाषी हैं। आप एक बार भी उनसे मिलेंगे कि उनका जादू आप पर सवार हो जायगा। आपके विचार एकदम मौलिक होते हैं और कांग्रेसके चोटीके नेताओंमें आप ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनको तथ्यों और आंकड़ों (Facts and

figures) की इतनी बड़ी जानकारी है। आँकड़े किसी विषयके भी हों, आपकी ज़ुबान पर रहते हैं। कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्यों में आप गरमदली हैं, पदग्रहण और वैध मनोवृत्तिके आप वैरी हैं, किन्तु हैं कठोर अनुशासन-पालक। जहाँ देशने बहुमतसे कोई निश्चय किया कि आपकी विरोध-वृत्ति मौन हो गई।

—श्री परमेश्वर सिंह।
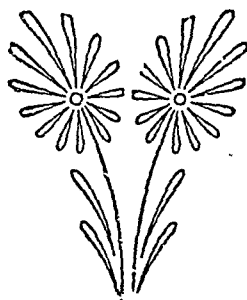
श्रीशङ्करराव देव

शक्ल-सूरतसे निरक्षर भट्टाचार्य, पर इस छोटी-सी देहके भीतर अद्भुत विद्वत्ता छिपाये हुए, क़दके छोटे और यों देखनेमें रूखे, किन्तु भीतरसे सरस तथा कर्तव्य-कठोर भी, काली-काली एक-एक इञ्चकी घनी दाढ़ियोंके भीतर भव्य मुखमण्डल, जिस पर देशके लिये मर-मिटनेकी दृढ़ताकी अटल छाप, वर्षोंसे गरीबीकी चक्कीमें पिस कर भी हृदयके उदार, जवानीसे गरमदली विचारोंके होने पर भी गाँधीवादके कट्टर समर्थक—ये गुण हैं, जिनसे विभूषित हम पाते हैं श्री शङ्कररावजी को।

करीब सैंतालीस साल पहलेकी बात है, महाराष्ट्र प्रान्तके सतारा गाँवमें एक चितपावन ब्राह्मणके घरमें एक बालककी पैदाइश हुई, बालकके पितामह उस समय ज़िन्दा थे। उसके पिता आठ भाई थे, परिवारमें दरिद्रता देवीका निवास था, दाने-दानेकी मुह-ताजी थी। ऐसे विकट समयमें इस शिशुका जन्म हुआ। मुश्किल से वह बालक दो-ढाई सालका हो पाया था कि उसकी माता उसके संकटकी आगमें घी का काम करनेके लिये इस असार संसारसे चल बसी। पिताजी उनके मानवी कमजोरियोंके शिकार थे। गैरजवाबदेहीकी वे सूरत थे। अतः इस नन्हें बालकको अपने

लालन-पालनके लिये ननिहालका ही मुँह जोहना पड़ा। वह तीन सालकी उम्रसे ही ननिहालमें अपनी मौसीके साथ रहने लगा।

जब वही बालक, जिसे आज हम श्री शङ्करराव देवके रूपमें देखते हैं, बढ़ा और जीवनकी सीढ़ियों पर चढ़ने लगा, तो एक-एक पग आगे रखते ही उसके सामने अनेक तरहकी बाधायें और कठिनाइयाँ आ डटीं। मासूम बालक शङ्कर आपदाओं, दिक्कतों और मुसीबतोंकी चट्टानोंसे टकराता हुआ आगे बढ़ा। ननिहालके पड़ोसी एक गाँवमें उसकी शिक्षाकी व्यवस्था की गई। वह पाठशाला में अपने वर्गमें सर्वप्रथम हुआ, इसके लिए उसको इनाम मिला और जब वह इनाम लेकर अपने घर पहुँचा, तो गाँवभरके लोगोंके दिलमें अचरजकी सीमा न रही। इसकी वजह यह थी कि गाँवमें शिक्षाका एकदम अभाव था और इनाम पाना तो उस जमानेमें बहुत बड़ी बात समझी जाती थी।

गाँवकी पाठशालामें कुछ वर्ष पढ़नेके बाद किशोर शङ्कर अंग्रेजी की तालीम पानेकी गरजसे किसी तरह अपने पैरोंपर खड़ा होकर पूना पहुँचे। वह अनाथ थे, किन्तु वहाँ भी एक व्यक्ति, जो उनके रिश्तेदार होते थे, मिल गये। उन्हीं श्री जोशीके परिवारमें रहकर ये विद्या-धनका अर्जन करने लगे। उस समय, जैसा कि कुमारी प्रेमावेन कण्टकने उस दिन कहा—'श्री शङ्कररावजीको एक वक्त चने चबाकर स्कूल जाना पड़ता था। मानसिक कठिनाइयाँ और आर्थिक संकट—दोनोंने मिलकर इनपर इस प्रकार हमला किया कि ये मैट्रिककी परीक्षामें सफल न हो सके।' दूसरे वर्ष सफलता मिली,

तब वे बड़ौदा चले गये और वहींसे बी० ए० की परीक्षा पास की। बी० ए०, एल-एल० बी० की प्रथम परीक्षा पास करके दूसरीकी तैयारीमें थे कि कई कार्योंसे विद्याध्ययन स्थगित करनेको लाचार होना पड़ा और तबसे अब तक हम श्री शङ्कररावजी देवको प्रथम श्रेणीके संगठनकर्त्ता, उच्चकोटिके देशभक्त और प्रचारक तथा कांग्रेस-नेताके रूपमें देखते आ रहे हैं।

श्री शङ्कररावजी बालब्रह्मचारी हैं। दूषित पारिवारिक वातावरणके बावजूद इन्होंने अपने चरित्र-बलको कायम रखा है और बचपनमें ही उन्होंने अपना सारा जीवन देश-सेवामें लगानेकी जो क़सम खाई थी, उसपर आज तक एक आनसे डटे हैं।

सन् १९१६ ई० में महात्मा गाँधीने चम्पारणमें जब किसानोंके उद्धारका शुभ कार्य आरम्भ किया, तब महाराष्ट्रसे अनेक राष्ट्रकर्मी चम्पारण गये थे। श्रीपुण्डरीकजीके बाद सन् १९१७ में शङ्कररावजी भी चम्पारण पधारे और सात महीनों तक बिहारी किसानोंके दुख-दर्द दूर करनेमें हिस्सा बँटाते रहे।

लेकिन इनके वास्तविक राजनीतिक जीवनका प्रारम्भ तो अमृतसर-कांग्रेसके बाद असहयोग-आन्दोलनके समयसे होता है। मुलशीके ऐतिहासिक सत्याग्रहके आप सूत्रधार रहे हैं। दो-दो बार उस सलसिलेमें आप सज़ा काट चुके हैं। पहली बारकी गिरफ्तारीमें आपके बेत लगाये गये थे और दूसरी बार क़ैदकी सज़ा मिली थी। बेत इसलिये लगे थे कि आपने जेलमें काम करनेसे इनकार कर दिया था।

शङ्कररावजी महाराष्ट्रके प्रसिद्ध गाँधीवादी नेता हैं। आप अपने राजनीतिक जीवनके आरम्भमें उग्रवादी समझे जाते थे और सरकार की नजरोंमें तभीसे काँटेकी तरह चुभते रहे हैं। आप वर्षों तक महाराष्ट्र प्रान्तीय-कांग्रेस कमिटीके मंत्री रहे हैं और इधर दो साल पहले तक आप महाराष्ट्र प्रान्तीय कांग्रेस कमिटीके अध्यक्ष रहे हैं।

सन् १९२५ में शङ्करराबजी कांग्रेससे अलग हो गये थे, क्योंकि वर्तमान कांग्रेस-पदाधिकारियों—श्री केलकर-पार्टीसे इनका गहरा मतभेद हो गया था और कांग्रेससे संन्यास ग्रहण कर ये सच्चे संन्यासीकी भाँति खादी-प्रचारका काम करने लगे थे, किन्तु जब इन्होंने कुछ वर्ष बाद देखा कि इनके संन्यास-ग्रहणसे लाभ उठाकर ऐसे लोग कांग्रेसमें घुस आये हैं, जो कांग्रेसकी मर्यादाको धूलमें मिला रहे हैं, तो ये फिर कांग्रेसमें शामिल हो गये और सुधारककी दिशामें कार्य करने लगे। अपना लक्ष्य सिद्ध करने भी न पाये थे कि सन् १९२७ ई० में 'स्वराज्य' नामक स्वसंपादित मराठी साप्ताहिक पत्रमें "निदान धर्म-युद्ध करता" शीर्षक राजद्रोहात्मक अग्रलेख लिखनेके जुर्ममें आपको दो साल कड़ी कैदकी सजा दे दी गई। उल्लेखनीय बात यह है कि इस मुकमेदमें इन्होंने पैरवी करनेसे साफ इनकार कर दिया था।

इसके पहले इन्होंने 'सत्याग्रही' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला था, अर्थाभावके कारण अन्तमें जिसे बन्द कर देना पड़ा। इस तरह शङ्करराबजीमें हमें एक कर्मठ और उचितवक्ता सम्पादकका दर्शन होता है।

सन् १९२९ में कैदसे रिहा होते ही आपने आज़ादीकी देवीके स्वागतार्थ प्रान्तके युवकों—क्रान्तिकारियोंका संगठन आरम्भ किया। सन् १९३० में तो सारे सूबेने आपकी संगठन-शक्ति, आन्दोलन-शक्ति और नेतृत्वका लोहा मान लिया। यही कारण था कि नमक-सत्याग्रह आरम्भ होते ही विलेपार्ले नामक स्थानमें आप गिरफ्तार कर लिये गये और एक सालके लिए कैद कर लिये गये। गाँधी-इर्विन-सन्धिके अनुसार आप भी जेलसे छूट आये और फिर राजनीतिसे विलग हो गये, किन्तु राजनीतिसे भला इतनी आसानीसे पिण्ड कैसे छूट जाता ? सन् १९३२ में फिर सत्याग्रहका बिगुल बजा और शङ्कररावजीको दो साल कैदकी सज़ा भोगनी पड़ी। इस वार आप व्यक्तिगत सत्याग्रहमें जेल गये थे। करीव दो सालकी कैदसे छूटे थे कि सन् १९३४ में महाराष्ट्रमें जंगल-सत्याग्रहका जोर बढ़ा और ये इस सत्याग्रहके पहले डिक्टेटरकी हैसियतसे एक सालके लिए फिर जेलमें ठेल दिये गये।

जेलसे छूटते ही सन् १९३७ में फैजपुर (महाराष्ट्र) कांग्रेस-अधिवेशनका भार आप पर आ पड़ा और आपने इस जोखिमभरी जिम्मेदारीको जिस तत्परता और लगनसे निबाहा, वह सारा मुल्क जानता है। गाँधीजीके रचनात्मक कार्यक्रमके अनुसार आपने पूना-जिलेके 'शाशवड' नामक स्थानमें एक आश्रमकी स्थापना की, जहाँ ग्राम-उद्योगके कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न किये जा रहे हैं। सन् १९३७ में आपकी कुर्बानियोंको मद्देनज़र रखकर कांग्रेसने आपको अपनी कार्यकारिणी समितिमें शामिल कर लिया, जिस पद पर आप आज भी डटे हैं।

शङ्कररावजीकी जिन्दगी भीषण संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्वकी रही है। आपने गरीबीको एकदम नजदीकसे देखा है, इसलिये गरीबोंके लिये आपके हृदयमें दयाका सागर हमेशा लहरें लेता रहता है। पैसेके मामलेमें आप बड़े ही उदार हैं। आप पहले उग्रवादी राजनीतिके समर्थक थे, पर अन्तमें आप पर गाँधी-नीति की विजय हुई। आप पहले नास्तिक (Rationalist) थे, लेकिन वर्षोंके जेल-जीवन और गीताके गहन अध्ययनने आप पर अस्तिकताकी मुहर लगा दी है। आप आध्यात्मिक वृत्तिके पुरुष हैं। हिरणसे खेलनेका आपका शौक अज़ीब है। अभी हाल ही, आपके 'शाशवड' आश्रमकी आपकी प्यारी हिरणकी आकस्मिक मृत्युसे आपको घोर संताप हुआ है। आपकी अनेक प्रवृत्तियोंमें हिमालय जानेकी प्रवृत्ति भी है।

आप साहसके पुतले, धुनके धनी, 'लोकशक्ति' सरीखे दैनिक पत्रके सम्पादक, 'महाराष्ट्रके गाँधी'—गाँधी इसलिये कि आप लगभग पाँच सालसे गाँधीजी की तरह ही जांघ तक ही कोपीन धारण किये, नंगे बदन, कमरमें घड़ी लटकाये रहते हैं—देशकी बन्धन-मुक्तिके लिये यौवन, जीवन, तन, मन, धन सर्वस्व निछावर करने-वाले आज़ादीके जंगके पक्के सिपाही और भारत माँके सच्चे सुपूत हैं।

—श्री परमेश्वर सिंह।
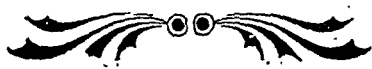
श्री एम० एन० राय

२१ जून १९३१। हिन्दुस्तानके सभी अखबारोंमें मोटे-मोटे अक्षरोंमें छपा था—'प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्री एम० एन० राय बम्बईमें गिरफ्तार।' सारा देश इस खबरसे भौंचक हो उठा। किसी भी भारतवासीको यह स्वप्नमें भी विश्वास नहीं था कि राय महाशय भारतवर्षमें ही हैं। इसलिए उस सुबहको यह खबर सुनकर सारा देश स्तब्ध हो गया। उस दिनके पहले तक एम० एन० राय भारतीय जनताके लिए एक अनजान छाया-मात्र थे, क्योंकि हिन्दुस्तानमें किसीको भी इसका पता न था कि रूस, मेक्सिको, टर्की और चीनकी क्रान्तियोंमें अपनी अपूर्व क्षमताका परिचय देनेवाला यह महान भारतीय क्रान्तिकारी अब किस देशमें है। इसलिए अचानक उस दिन सारा देश चौंक पड़ा और आज तो एम० एन० राय भारतीय राजनीतिक-जगतका एक चमकता सितारा है।

१८९२ में कलकत्ताके निकट चौबीसपरगना जिलेमें एक उच्च ब्राह्मण-वंशमें राय महाशयका जन्म हुआ था। परिवारकी जीविका गाँवके मन्दिरकी पूजासे चलती थी; लेकिन राय महाशयको बचपनसे ही पूजाकी उपादेयतामें अविश्वास था। बचपनमें लोग इन्हें नरेन्द्रनाथ कहा करते थे। गाँवके स्कूलकी पढ़ाई समाप्त होनेके

पहले ही वे बंग-भंग आन्दोलन और स्वदेशी आन्दोलनमें भाग लेने लगे। पीछे वहाँ से हटकर वे श्री अरविन्द घोषके राष्ट्रीय विश्वविद्यालयमें जा पहुंचे और वहाँसे आनर्सके साथ बी० ए० पास किया। अरबिन्द घोषके सम्पर्कमें आने पर वे उनकी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी संस्था 'युगान्तर' के सदस्य बन गये। जिस समय ये 'युगान्तर' में सम्मिलित हुए थे, इनकी अवस्था सिर्फ १४ सालकी थी।

युगान्तर गुप्त क्रान्तिकारी षड्यंत्रोंकी संस्था थी और बंग-भंगको लेकर बंगालके नौजवानोंमें जो विद्रोहकी भावना प्रज्वलित हुई थी, उसीके फलस्वरूप इसका निर्माण हुआ था। १९०७ में नरेन्द्र अपने गाँवके रेलवे स्टेशनको लूटनेके जुर्ममें गिरफ्तार हुए, लेकिन मैजिस्ट्रेटको यह विश्वास ही नहीं हुआ कि इतनी कम उम्रका लड़का ऐसी हिम्मतका काम कर सकता है, अतः वे छोड़ दिये गये। इसके बाद दिन-रात गुप्त रूपसे नरेन्द्र क्रान्तिकारी षड्यंत्रोंको संगठित करने और अपनी संस्थाको मजबूत बनानेमें लगे रहे। अन्तमें १९१० में 'हवड़ा-षड्यंत्र केस' के सिलसिलेमें ५० नौजवानोंके साथ नरेन्द्र भी गिरफ्तार कर लिये गये। २० महीने तक मुकदमा चलता रहा; और इस दौरानमें जेलके अन्दर विचाराधीन कैदियों पर जैसे अत्याचार होते रहे उसका वर्णन सुन कर आज भी रोमांच हो आता है। बीस महीनेके बाद अपने कई साथियोंके साथ नरेन्द्र निर्दोष समझे जाकर छोड़ दिये गये।

जेलसे निकलते ही वे युगान्तरके नेता श्री योगेन्द्रनाथ

मुखर्जीके दाहिने हाथ बन गये। प्रान्तमें घूम-घूम कर दलका संगठन करने और उसके लिए रुपयोंका प्रबन्ध करनेका भार नरेन्द्रके ऊपर दिया गया। बंगालमें 'युगान्तर' को पूर्ण संगठित कर वे विहारकी ओर बढ़े। उन दिनों पटना भी क्रान्तिकारी षड्-यंत्रोंका एक छोटा–मोटा अड्डा बन रहा था। नरेन्द्र पटना आ पहुंचे और पुलिसकी आंखोंमें धूल झोंक कर पटना-कालेजके सामने 'मदरलैण्ड' नामक एक प्रेसमें कम्पोजीटरका काम करके रहने लगे। नरेन्द्र उस समय एक भीषण राजनीतिक जुर्ममें फरार थे और पुलिस इनके पीछे घूम रही थी। लेकिन फिर भी ये कम्पोजीटर बन कर उस प्रेसमें जमे रहे और क्रान्तिकारी-संगठनका कार्य करते रहे।

इसी समय यूरोपीय महायुद्ध छिड़ा और बंगालके नौजवानोंने यह निश्चय किया कि इस युद्धके अवसर पर जब ब्रिटिश सरकार उधर पश्चिममें युद्धमें लगी रहे, तब तक सशस्त्र क्रान्तिके जरिये भारतकी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली जाय। इसी उद्देश्यसे युगान्तरके सदस्योंकी विशेष बैठक हुई। सर्वसम्मतिसे यह निश्चित हुआ कि हिन्दुस्तानमें सशस्त्र क्रान्तिकी सफलताके लिए जर्मन-सरकारकी सहायता प्राप्त की जाय, तथा जावा, स्याम, चीन आदि देशोंके विप्लववादियोंसे सम्बन्ध जोड़ा जाय। इस कार्यके लिये रुपयोंकी आवश्यकता हुई और फलतः राजनीतिक डाके डाले गये। १९१५ में 'बर्ड एण्ड कम्पनी' और बेलियाघाटकी डकैतियोंमें करीब ५८ हजार रुपये मिले। इन डकैतियोंमें नरेन्द्रका भी प्रमुख हाथ था, ऐसा कहा जाता है।

इसके बाद दलके एक सदस्यको स्यामके विप्लववादियोंसे सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए बैंकाक भेजा गया। नरेन्द्र पर जर्मनी जाकर वहांकी सरकारसे भारतमें अस्त्र-शस्त्र भेजनेकी बात करनेका भार लादा गया। यह काम बहुत ही खतरनाक था, क्योंकि जरा-सा भी सन्देह होने पर अपराधीको गोली लगा दी जाती थी, लेकिन नरेन्द्रने कभी भय करना सीखा ही नहीं था। १६१४ के अप्रैलमें नरेन्द्र जर्मनीके लिये रवाना हुए। इन्होंने अपना नाम बदल कर 'सी० मार्टिन' रख लिया। गुप्तचरोंकी आंखोंमें धूल झोंककर नरेन्द्र बटाविया पहुंचे और वहाँके जर्मन-सरकारके एजेण्टसे मिले। उसने ३०,००० राइफलों और गोलियों तथा दो लाख रुपयोंसे सहायता करनेका वादा किया। यह सब सामान लेकर 'मवेरिक' नामक एक जहाज कलकत्ता आनेवाला था। मार्टिनने बटावियासे रुपये भेजने शुरू कर दिये और जून और अगस्तके महीनोंमें ४३,००० रु० बंगालके विप्लववादियोंके पास भेजे। यह सब इन्तजाम कर मार्टिन बंगाल लौट आये ; लेकिन दुर्भाग्यवश 'मवेरिक' कलकत्ता नहीं पहुंच सका और फिर मार्टिनको जावाकी ओर प्रस्थान करना पड़ा।

इस बार जर्मन-अधिकारियोंने दो जहाज सामान देनेका बन्दोबस्त कर दिया। एक जहाज पर २०,००० राइफलें, ८,०००,००० गोलियां और २,००० पिस्तौल और दूसरे पर १०,००० राइफलें और १० लाख गोलियां आनेवाली थीं। लेकिन भारतमें अंग्रेजी खुफिया-विभागको इस क्रान्तिकारी-संगठनकी खबर लग

गई। चारों ओर गिरफ्तारियां शुरू हुईं और इसी समय बाला-सोरके जंगलमें श्रीयतीन्द्रनाथ मुखर्जी और अंग्रेजी सेनाका युद्ध हुआ, जिसमें यतीन्द्रनाथ मारे गये। उनकी मृत्युके साथ ही बंगाल का संगठन तितर-बितर हो गया और दो जहाजोंके साथ 'मार्टिन' भी विदेशमें ही रह गये।

जावासे वे अमेरिकाके लिए चले, लेकिन अमेरिका पहुंचनेके पहले वे सुमात्रा, डच-इण्डीज़, इण्डोचाइना, फिलिपाइन, जापान, चीन आदि देशोंकी खाक छानते रहे। हाँगकाँगमें जहाज पहुंचने के पहलेसे ही इनकी गिरफ्तारीकी बड़ी तैयारी कर ली गई थी; लेकिन जहाज लगनेके पहले ही कप्तानको रुपयेका लालच देकर ये दूसरे जहाजसे फिलिपाइन्न जा पहुंचे। हाँगकाँगके ब्रिटिश अधि-कारी हाथ मलकर रह गये। इधर 'मार्टिन' फिलिपाइनमें अमे-रिकाकी साम्राज्य-शाहीके विरुद्ध होनेवाले क्रान्तिकारी-आन्दोलनमें सहयोग देने लगे, लेकिन अपने देशके विद्रोहको सफल बनानेकी उनकी इच्छा अभी ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी। इसीलिये शीघ्र ही श्री रासबिहारी बोससे मिलनेके लिये वे जापान चले गये, लेकिन जापान-सरकार भला ब्रिटिश सरकारके विद्रोहीको अपने राज्यमें क्यों कर रहने देती? इनके पीछे गुप्तचर लगाये गये। लेकिन किसी तरह इन्होंने रासबिहारी बोससे मुलाकात करके कुछ बातें कर ही लीं।

अन्तमें जब इन्होंने देखा कि अब वहाँ रहनेसे गिरफ्तारी अवश्य-म्भावी है, तो वे वहाँसे भाग निकले। किसी तरह छिप कर कोरिया

पहुंचे, वहाँसे मंचूरिया होते हुए टिन्सिन जा पहुंचे। यहाँ पहुं-चनेके पहलेसे ही इनकी ताकमें अंग्रेज पुलिस बैठी थी और गाड़ीसे उतरते ही ये गिरफ्तार कर लिये गये। लेकिन किसी तरह वहाँके बूढ़े राजदूतको चकमा देकर ये भाग निकले और वहीं रह कर गुप्त रूपसे चीनके प्रसिद्ध क्रान्तिकारी डा० सन-यात-सेनके दलके साथ सम्पर्क बढ़ाने लगे।

फिर कुछ दिनोंके बाद वे वहाँसे कैथोलिक पादरीके वेशमें अमेरिकाके लिये रवाना हो गये। अमेरिका पहुंचते ही उनके आगमनकी खबर चारों ओर फैल गई। वहीं प्रसिद्ध स्व० साहित्यिक श्री ननुगोपाल मुखर्जीके परामर्शसे अपना नाम नरेन्द्रनाथसे बदल कर मानवेन्द्रनाथ राय रख लिया। अमे-रिकामें रहकर एम० एन० राय वहाँ रहनेवाले भारतीय विप्लव-वादियोंसे मिलने लगे। लाला लाजपत राय और भगतसिंहके पिता सरदार किशुनसिंह भी उन दिनों वहीं थे। एम० एन० राय इन लोगोंसे भी मिले और भारतीय क्रान्तिको पुनर्जीवित करनेकी बातें सोची जाने लगीं। लेकिन राय महाशय उन दिनों कार्ल-मार्क्सके विचारोंसे अधिक प्रभावित होते जा रहे थे, अतः उन्होंने अमेरिकाके मजदूरोंकी समस्याओंको लेकर उनका सक्रिय सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन अमेरिकाके प्रजातंत्र-राज्यमें उनके उग्र विचार असह्य हो उठे और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन इस बार भी वे अदालतको चकमा देकर भाग निकले और गुप्त रूपसे मेक्सिको जा पहुंचे।

मेक्सिकोमें जब एम० एन० राय पहुंचे, तब वहाँ सारे देशमें क्रान्तिकारी-जन-आन्दोलन फैला हुआ था। इन्होंने पहुंचते ही उस आन्दोलनके नेताओंसे मिल कर उसमें भाग लेना शुरू कर दिया। इनकी विद्वत्ता, संगठन-शक्ति और क्रान्तिकारी साहससे वहाँके सभी लोग मुग्ध हो गये और कुछ ही दिनोंमें राय वहाँके 'अपने' आदमी समझे जाने लगे। मेक्सिकोमें ये ढाई साल तक रहे और वहाँके राजनीतिक जीवनमें इनका स्थान बहुत ऊँचा हो गया। १६१८ के आरम्भमें इन्होंने वहाँ कम्यूनिस्ट पार्टीकी स्थापना की, जिसके ये स्वयं प्रथम मंत्री बनाये गये। मेक्सिकोके राजनीतिक जीवनमें कम्यूनिज्मका प्रचार सबसे पहले श्री एम० एन० रायने ही किया। इस पार्टीकी ओरसे एक अखबार (एल-कम्यूनिस्टा) निकाला गया, जिसके श्री राय ही सम्पादक बनाये गये।

उन्हीं दिनों इन्होंने अपनी पहली रचना High Road to World Peace प्रकाशित की। इस पुस्तकसे उनकी ख्याति देश-देशके कम्यूनिस्टोंमें फैल गई। रूसमें लेनिनके कानोंमें भी राय महोदय की ख्याति जा पड़ी और वह ऐसे साहसी क्रान्तिकारीको अपने देश में बुला भेजनेके लिये व्यग्र हो उठा। अन्तमें लेनिनने इन्हें रूस बुला भेजा। लेकिन रास्तेमें गिरफ्तार होनेकी आशंका थी, इस-लिये १६१६ में मेक्सिकोके प्रेसिडेण्टने इन्हें अपना Confidential Agent बना कर रूसके लिये रवाना कर दिया। रास्तेमें स्पेनमें एक महीना और जर्मनीमें कुछ महीनों तक रहकर १६२० के आरम्भमें एम० एन० राय रूस जा पहुंचे

रूस पहुँचते ही राय महोदयने अपनी सभी सेवाएँ रूसी प्रजातंत्रको समर्पित कर दीं और वे वैज्ञानिक ढँगसे कोमिण्टर्नके संगठनमें लग गये। उन दिनों रूसमें कोमिण्टर्नकी दूसरी विश्व-सभा की तैयारी हो रही थी। इस सभाके लिए लेनिनने एक थीसिस (मौलिक निबन्ध) तैयार किया, जिसके कुछ अंशोंसे मतभेद होनेके कारण श्रीरायने भी अपना एक थीसिस तैयार किया। सभामें दोनों थीसिस पढ़े गये और लेनिनने भी श्रीरायके तर्कोंको अकाट्य मानकर इनका थीसिस भी मान लेनेका विचार रखा।

उसके कुछ दिन बाद जेनेवासे इनकी लिखी India in Transition नामक किताब निकली, जिसकी सारे संसारमें काफ़ी प्रतिष्ठा हुई। अनेक भाषाओंमें इसके अनुवाद हुए। सिर्फ जर्मन-भाषामें एक सालके अन्दर इसके तीन संस्करण हुए—तीस हजार प्रतियाँ छपीं।

१९२० में रूसकी दूसरी विश्व-सभामें भाग लेनेसे श्रीरायकी ख्याति सारे संसारमें फैल गयी। उसी साल वे कम्यूनिस्ट इण्टरनेशनलकी कार्यकारिणी तथा उसके प्रिसिडियम (सभापतियोंकी कमिटी) के सदस्य चुने गये। १९२५ में कम्यूनिस्ट इण्टरनेशलनकी पाँचवीं सभामें श्रीरायका ही थीसिस सर्वसम्मतिसे स्वीकृत किया गया। उन्हीं दिनों वे कोमिण्टर्नके पूर्वी विभाग (मिश्र, टर्की, अरब, फारस, हिन्दुस्तान, चीन, जापान) के प्रधान चुने गये। इन्होंने उन देशोंमें घूम-घूम कर जन-आन्दोलनको प्रगतिशील बनानेकी जबर्दस्त कोशिश की और अगर १९२८ में कोमिण्टर्नकी

नीति न बदल दी जाती, तो कम्यूनिस्ट-आन्दोलनका आज दूसरा ही रूप होता।

कोमिण्टर्नके पूर्वी विभागके प्रधानकी हैसियतसे श्रीरायने मध्य एशियाके प्रदेशों (तुर्किस्तान वगैरह) में कम्यूनिज़मके प्रचारके लिये दौरा किया और वहाँ उन्होंने ऐसी संगठन-शक्तिका परिचय दिया कि कुछ ही दिनोंमें वे तुर्किस्तान-प्रजातंत्रके आनरेरी प्रेसिडेण्ट चुन लिये गये। वे वहाँ छः महीने तक रहे और तुर्किस्तानकी आज़ादीके आन्दोलनमें भाग लेते रहे। पीछे लेनिनकी बुलाहट पर वे मास्को वापस चले गये। लेकिन कुछ दिनों बाद ये पुनः तुर्किस्तान वापस आ गये। वहाँसे जमीनके रास्तेसे भारत आना चाहा, लेकिन ऐसा करना खतरेसे खाली न था। इसलिये जल-मार्गसे भारत आनेका सोचकर तुर्किस्तानसे ये जर्मनी जा पहुंचे।

१६२२ में उन्होंने जर्मनीमें Vanguard नामक पत्र निकाला, जिसमें हिन्दुस्तानकी समस्यायों पर काफी प्रकाश डाला जाता था। लेकिन इनके उग्र विचारोंको जर्मन-सरकार भी बर्दाश्त नहीं कर सकी और उन्हें वहाँसे भागकर स्वीटज़रलैण्ड जाना पड़ा। वहाँसे भी उन्होंने 'वैनगार्ड' का प्रकाशन जारी रखा। लेकिन कुछही दिनोंमें इन्हें स्वीज़रलैण्डसे भी भागना पड़ा। वहाँसे भागकर ये फ्रांस पहुँचे, लेकिन यहाँ भी उनकी वही हालत हुई। १६२४ के अन्तमें ये फ्रांस से भी निकाल दिये गये। विवश होकर उन्हें रूस लौट जाना पड़ा। रूस पहुँचकर वे वहाँ कुछ दिनों तक रहे। उन्हीं दिनों इन्होंने निम्नलिखित किताबें लिखीं—

(1) Aftermath of Non-Co-operation.

(2) Future of Indian Politics.

(3) Political letters.

(4) What Do We Want?

१९२६ के अन्ततक एम० एन राय रूसमें ही रहे। पीछे स्टालिन के अनुरोधसे इन्हें चीनके लिये प्रस्थान करना पड़ा। वहाँ जाकर वे कम्यूनिज्मके प्रचारमें लगे रहे। पीछे वहाँसे जर्मनी चले गये दो साल तक वहीं रहे। १९३० में इन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभवोंके आधार पर Revolution and Counter Revolution in China नामक किताब लिखी।

उसके वाद एकाएक १९३१ के २१ जूनको वे वम्बईमें गिरफ्तार कर लिये गये। इस वीच वह कहाँ रहे, इसका किसीको पता नहीं था। जवाहरलालजी की आत्मकथासे यह वात जाहिर होती है कि वे कराची-कांग्रेसमें उपस्थित थे। कहा जाता था कि १९२४ में कानपुर षड्यंत्र केसके सम्बन्धमें इनपर मुकदमा चलाया जानेवाला था। उसी इल्ज़ाममें इनकी गिरफ्तारी हुई थी। वम्बईसे इन्हें कानपुर लाया गया। मुकदमा चला और इन्हें १२ साल कालापानी की सज़ा मिली। अपनी सज़ाके विरुद्ध इन्होंने जो वयान दिया, वह My Defence के नामसे प्रकाशित हुई है, जिसे भारत सरकारने जब्त कर लिया है। इलाहावाद हाईकोर्टने अपीलमें इनकी सज़ा १२ सालसे घटाकर छः सालकी कर दी और ये जेलमें वन्द कर दिये गये। इनकी सज़ासे अन्तर्राष्ट्रीय हलचल मच गई और हर

जगह उनकी रिहाईकी माँग पेश हुई। हैमबर्ग में २०,००० मज़दूरोंका प्रदर्शन हुआ, शिकागोमें १५,००० मजदूरोंने ब्रिटिश राजदूतके आफिसके सामने प्रदर्शन किया। इङ्गलैण्डमें भी मजदूर-पार्टीने हल्ला मचाया। लेकिन ब्रिटिश सरकार टससे मस नहीं हुई। संसार-प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टीनने भी इन्हें मुक्त करनेको ब्रिटिश सरकारसे निवेदन किया, लेकिन कोई फल न हुआ।

जेलमें एम० एन० रायने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। जस्टिस सुलेमानके नये वैज्ञानिक सिद्धान्तका खण्डन भी इन्होंने जेलसे ही किया।

Marxism vrs. Congress-Socialism, Historic Role of Fascism and Islam और Our differences 'मार्क्सवाद वनाम कांग्रेसी साम्यवाद', 'फासिज्म और इस्लामका 'ऐतिहासिक महत्व' और 'हमारे मतभेद' नामक किताबें इसी बारकी जेल-यात्रामें लिखी गईं।

अपनी सज़ा पूरी कर १९३६ के नवम्बरमें कामरेड एम० एन० राय जेलसे निकले और निकलते ही इन्हें देशके सामने राष्ट्रीय प्रजातंत्र-क्रान्तिकी एक स्कीम देशके सामने रखी। इस स्कीमको सामने रखकर एम० एन० राय १९३६ से ही देशके कोने-कोनेमें घूमकर संगठन कर रहे हैं। आज उनका दल 'रायिस्ट' के नामसे पुकारा जाता है। यह दल उग्र क्रान्तिवादी है—साम्यवादी दलसे भी दो क़दम आगे। इनकी पत्नी श्रीमती एलेन राय फ्रांस-स्थित अमेरिकन राजदूतकी पुत्री हैं और अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिकी क्रान्तिकारिणी महिला भी हैं।　　—श्रीनवकुमार एम० ए०।

श्री सुभाषचन्द्र बोस

२४ जनवरी १९४०—उस दिन सुभाष बाबू आगरा आये थे। उसी दिन मैंने उन्हें पहले पहल देखा थां। मैंने अपनी डायरीमें लिखा—

सुभाष बाबूकी दैदीप्यमान मूर्तिको देखकर मैं मुग्ध रह गया। चेहरेसे ओज टपकता था। मानों अभी-अभी किसी अदृश्य शिल्पीने गढ़ा हो। उनकी आँखोंमें वह ज्योति थी तथा वाणीमें वह कड़क और भावुकता जो कापुरुषों को भी पुरुष बना दे, निश्चय ही सुभाष नौजवान भारतकी उमंगों और आकांक्षाओंकी प्रतिमूर्ति दिखाई देते थे। वह अपने भाषणोंमें नाहरकी तरह ब्रिटिश साम्राज्यशाही गीदड़को ललकार रहे थे। उनके व्यक्तित्वमें वैद्युतिक आकर्षण और आज्ञापालन करानेकी शक्ति झलकती थी। निश्चय ही उस तरुण-तपस्वीकी वह दिव्य मूर्ति भुलाये भी नहीं भूली जा सकती।”

× × ×

श्री सुभाषचन्द्र बोसका जन्म जनवरी सन् १८९७ में उड़िया बाजार, कटकमें हुआ था। उनका पैतृक गृह चौबीस परगनाके कोडालिया गाँवमें है। इनके पिता श्री जानकी बोस सुशिक्षित

तथा सुसंस्कृत व्यक्ति थे और माता बड़ी दयालु थीं। अतः बालक बोसके ऊपर माता-पिताका काफी प्रभाव पड़ा। बचपनमें ही सुभाष तथा उनके साथियोंने एक दल बनाया था, जिसके सदस्य बीमारोंकी सेवा-सुश्रूषा करते थे तथा गरीब और असहायोंकी लाशोंको श्मशान-भूमि में ले जाते थे। गरीबोंको देखकर स्वतः ही बालक या किशोर सुभाषका हृदय दयासे द्रवित हो जाता था।

सुभाषका विद्यार्थी-जीवन कटकमें यूरोपियन स्कूलसे प्रारम्भ हुआ। बादमें वह रवेनशा-कालीजियेट स्कूलमें दाखिल हुए। १९१३ में मैट्रीक्यूलेशन परीक्षामें उन्होंने कलकत्ता यूनिवर्सिटीमें दूसरा स्थान प्राप्त किया। सुभाष बोसकी बुद्धि जितनी ही कुशाग्र थी, उतनी ही उनमें आत्मसम्मानकी भावना भी प्रखर थी, इसीलिये प्रेसीडेन्सी कालेज, कलकत्तामें अपने सहपाठियोंका पक्ष लेकर वह शासक-मनोवृत्तिके अंगरेज प्रोफेसर ओहनसे भिड़ पड़े। इस षड्-यंत्रका मुखिया सुभास बोसको बताया गया, लेकिन उन्होंने मुखबिर बननेकी अपेक्षा कालेजको ही तिलांजलि देना उचित समझा। इसके बाद इन्होंने स्काटिश चर्च कालेजमें दाखिल होकर कलकत्ता विश्व-विद्यालयसे बी० ए० आनर्सकी उपाधि प्राप्त की।

१९१९ में वह सिविल सर्विसकी प्रतियोगिताके लिए विलायत गये। केम्ब्रिज विश्व-विद्यालयसे उन्होंने मनोविज्ञान तथा नीति-शास्त्रमें बी० ए० पास किया। इङ्गलैण्डमें विद्यार्थी-जीवनमें आत्म-सम्मान तथा न्यायकी रक्षाके लिए सुभाषने उस सर्कुलरका विरोध

कर—जिसमें सिविल सर्विसकी प्रतियोगितामें बैठनेवाले विद्यार्थियों पर कुछ भद्दे आक्षेप किये गये थे, एक और ज्वलन्त उदाहरण पेश किया। उनके इस कार्यसे यद्यपि ब्रिटिश अधिकारी उनसे बहुत नाराज हुए, लेकिन उन्हें झख मारकर वह सर्क्युलर बदलना पड़ा। सिविल-सर्विसकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेका सुभाषको पूरा विश्वास न था; किन्तु वह परीक्षामें सफल ही न हुए, बल्कि उत्तीर्ण छात्रोंमें उनका चौथा नम्बर रहा।

इसके बाद ही सुभाष बाबूके समक्ष सिविल सर्विससे कहीं कड़ी एक परीक्षा सामने आ खड़ी हुई। उनको दो चीजों—आज़ादी और गुलामीमें से एक चीज़ चुननी थी और उन्होंने आज़ादीको ही वरण किया। बंग-भूमिके इस नौनिहालने ब्रिटिश साम्राज्यवादकी शोषक मशीनका पुर्ज़ा बननेसे साफ इन्कार कर दिया। भोगीके बदले उसने योगीका रूप धारण किया।

सुभाष बाबू पर देशबन्धुका ठीक वैसा ही प्रभाव पड़ा, जैसा लोहेके ऊपर चुम्बकका। जिस प्रकार रामकृष्ण परमहंसको विवेकानन्द मनके अनुरूप शिष्य मिले थे, उसी प्रकार देशबन्धुने भी सुभाषको एक ऐसा प्रभावशाली नवयुवक पाया, जो उनके जीवन-सन्देश (Mission) को पूरा कर सकता था। फलतः सुभाष बाबू देशबन्धु के 'लेफ्टिनेण्ट' बन गये।

१६२१ के दिसम्बरमें स्वयंसेवकोंके संगठनसे कार्यमें सुभाष बाबू प्रथम बार गिरफ्तार हुए। उन्होंने 'प्रिंस आफ वेलस'की भारत-यात्राके बायकाटके आयोजनमें बड़ा भाग लिया था। इसके बाद

१९२३-२३ में देशबन्धुको उनकी स्वराज्य-पार्टीके संगठनमें सुभाष बाबूने पूरी मदद दी। देशबन्धुने अपने 'लेफ्टीनेण्ट' को उसकी योग्यतासे मुग्ध होकर कलकत्ता-कारपोरेशनका एक्जीक्यूटिव अफसर बनाया।

लेकिन सरकारकी शनि-दृष्टि सुभाष बाबू पर पड़ चुकी थी; फलतः आतंकवादको प्रोत्साहन देनेके अपराधमें २५ अक्तूबरको बंगालके इस शेरको माँडलेके पिंजड़ेमें बन्द किया गया। जेलोंके अन्दर ही सुभाष बाबूने अपने नवयौवनके मादक स्वर्णिम दिन बिताये। माँडले-जेलमें दुर्गा-पूजाके अवसर पर जेलके अफसरोंकी ओरसे उत्सव मनानेके लिए सहूलियतें न पानेके कारण उन्होंने ४१ दिनका अनशन किया था।

जेलकी तपती प्राचीरोंकी भीषणताका सुभाष बाबूके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा, उन्हें राजयक्ष्मा हो गया। डाक्टरोंने यह अनुमति दी कि स्वास्थ्य-सुधारके हेतु उन्हें यूरोप जाना चाहिए, पर सरकारने उनकी यूरोप-यात्राके साथ ऐसी शर्त जोड़ दी कि उनका जहाज किसी भारतीय बन्दरगाहको न छुए। सुभाष बाबूने विदेशमें मुक्त जीवनके बदले स्वदेशमें बन्दी-जीवनको ही पसन्द किया। अतः जब उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया, तब सरकारने अपने सिरसे भार उतारनेके लिये उन्हें १७ मई १९२७ को मुक्त कर दिया।

इसके बाद हम सुभाष बाबूके जीवनका एक महत्त्वपूर्ण पृष्ठ देखते हैं। वह है कलकत्ता कांग्रेस। इस कांग्रेसमें वह स्वयंसेवकोंके

सेनापति थे। फासिस्टोंकी काली कमीजों (Black shirts) और नात्सियोंकी भूरी क़मीजोंमें (Brown shirts) में ज़ो रोब, शान और अनुशासन दिखाई देते हैं ठीक उसी तरहका तेज, बल और अनुशासन स्वराज्य-सैनिकोंमें दिखाई देता था, जिसने सुभाष बोसको कलकत्ता कांग्रेसमें देखा है अथवा जनरल कमांडिंग अफसरके रूपमें उनका चित्र ही देखा है, वह लाख कोशिश करने पर भी यह न कह सकेगा कि सुभाष बोस वाक़ई सिपहसालार नहीं थे।

१६२६ लाहौर-कांग्रेसके अधिवेशनमें सुभाष बाबूने एक संशोधन पेश किया था कि हिन्दुस्तानमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसके सहायकोंका तख्ता पलटनेके लिये समानान्तर सरकार (Parallel Government) स्थापित की जाय।

अगस्त १६२६ में राजनैतिक बन्दी-दिवस मनानेके अपराधमें उनको फिर एक सालके लिये जेलके सींखचोंमें बन्द कर दिया गया। जेलमें उनके ऊपर पैशाचिक मार भी पड़ी, जिसके कारण वह तीन घंटे तक बेहोश पड़े रहे। जेलसे छूटने पर भी १४४ धारा भंग करनेके अपराधमें उनको सात दिनकी सजा हुई। सरकारका दमन-चक्र रुका नहीं। २६ जनवरी ३० को स्वाधीनता-दिवसके भेंट-स्वरूप उनके ऊपर गोरे सार्जण्टोंकी दानवी मार पड़ी और उनको छः महीनेकी सजाका हुक्म भी सुना दिया गया। बादमें गाँधी-इर्विन समझौतेमें वह छूटे। सुभाष बाबूने एकके बाद दूसरी अग्नि-परीक्षा दी और वह सबमें उत्तीर्ण हुए।

जेलसे मुक्त होनेके बाद सुभाष बाबूको हम युवक-संघों

(Youth League) के मध्य देखते हैं, लेकिन इन्हें तो सरकार देशमें काम करते हुए फूटी आँखसे भी नहीं देख सकती थी।

अतः २५ नवम्बर ३२ को सरकारने सुभाष बाबूको नजरबन्द कर लिया। इस नजरबन्दीमें उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। स्वास्थ्य-सुधारके हेतु उन्होंने देश-वासियोंसे विदा ली और यूरोपको चले गये।

यूरोपमें थे तो क्या हुआ, "समझो वहीं हमें भी, दिल हो जहाँ हमारा" के अनुसार सुभाषको रह-रह कर अपनी मातृभूमिकी याद आती थी। विदेशोंमें भारतका प्रचार-कार्य जितना सुभाष बाबूने किया, उतना पं० जवाहरलाल नेहरूको छोड़कर और किसीने नहीं किया। यूरोपमें सुभाष बाबूने भारतके स्वतंत्रता-आन्दोलनके सम्बन्धमें 'The Indian Struggle' नामकी एक पुस्तक लिखी।

यहाँ यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि भारत सरकार सुभाषको सदाके लिए जलावतन ही रखना चाहती थी। जब वे अपने पिताके अंतिम दर्शनके लिए भारत आये, उस समय भी सरकारी नीतिकी नंगी तलवार उनके ऊपर लटकती रही। अपने पिताके श्राद्धके बाद यूरोप लौट तो गये, लेकिन उन्हें सदाके लिए देश-निकाला मंजूर न था। फलतः ८ अप्रैल ३६ को बम्बईमें पैर रखते ही वे गिरफ्तार हो गये। सरकारसे कई बार कहा गया कि वह उन पर मामला चलाये, लेकिन सरकार सब आलोचनाओं और अनुनय-विनयको बताशेकी तरह हज़म कर गई।

कुछ दिन पूनाकी जेलमें रख कर उनको कुर्सियांग भेजा गया। वहाँ उनका स्वास्थ्य एकदम गिर गया। सारे देशने उनकी रिहाईके लिए १० मई ३६ को सुभाष-दिवस मनाया। अन्तमें सरकारने १७ मार्च ३७ को उन्हें रिहा कर दिया।

जेलसे मुक्त होनेके कुछ ही दिन बाद सुभाष बाबूने लंदनकी यात्रा की। वहाँ उन्होंने ब्रिटिश पार्लमेंटको चेतावनी दी कि कांग्रेस प्रान्तीय स्वराज्यकी तरह संघ-शासनको नहीं अपनावेगी। १९३८ में हरिपुरा-कांग्रेसमें वह एकमतसे राष्ट्रपति चुने गये। कांग्रेसके सभापति-पदसे उन्होंने जो भाषण दिया, वह ओजस्वी होनेके साथ मौलिक भी था। आपने कहा—"ब्रिटिश साम्राज्य स्वतंत्र देशों, उपनिवेशों तथा शोषित मुल्कोंका एक अजीब भानुमतीका कुनवा है। यह मिट्टीके पाँवों पर खड़ा है। साम्राज्यके भीतर तथा बाहर दोनों ओरसे उसपर आक्रमण हो रहा है, अतः अब वह ज़िन्दा नहीं रह सकता। हाँ, स्वतंत्र-राष्ट्रोंके संघके रूपमें यदि उसकी कायापलट हो जाय, तो वह रह सकता है।" अपने राष्ट्रपतित्व-कालमें सुभाष बाबूने संघ-शासनके खिलाफ देशके कोने-कोनेमें आवाज बुलन्द की।

इसके बाद ही मार्च १९३९ का दुर्भाग्यपूर्ण वर्ष आता है। सुभाष बाबू डा० पट्टाभि सीतारामय्याके मुकाबलेमें राष्ट्रपतिके चुनाव में खड़े होते हैं। यद्यपि वह बहुमतसे डा० सीतारामय्याके मुकाबलेमें जीत तो जाते हैं, किन्तु देशमें मत-भेद उत्पन्न हो जाता है। देश गाँधीवादके पीछे है, साथ ही सुभाष बाबूके त्याग और उनकी

तपस्याका आदर करता है। त्रिपुरी कांग्रेसमें गाँधीजी और उनके कार्यक्रम पर विश्वास प्रकट किया जाता है। सुभाष बाबू अपने भाषणमें वह ब्रिटिश सरकारको ६ महीनेका अल्टीमेटम देनेकी सलाह देते हैं।

अन्तमें सुभाष बाबू इस्तीफा दे देते हैं और फारवर्ड ब्लाक—अग्रगामी दल—बनाते हैं। सुभाष बाबूके खिलाफ अनुशासन-भंगकी कार्रवाई होती है। तीन सालके लिये उनको कांग्रेस-पदाधिकारी होनेसे वंचित किया जाता है। इस समय यह स्थिति है कि सुभाष बाबू कांग्रेस-कार्य-समितिको सत्याग्रहका ऐलान करनेके लिए मजबूर करना चाहते हैं।

सुभाष बोसको अपने जीवनका कुछ मोह नहीं है, क्योंकि वह गीताके इस अमर पदमें विश्वास करते हैं।—

"नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः"

ऐसे योगीको सिविल सर्विसमें जीते हुए भी अपनेको मृतक और जंगे-आज़ादीमें अपना खून बहाते हुए भी अपनेको अमर समझना स्वाभाविक है। ठीक है—

"या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः"

जैसे महान् एवं दिव्य शब्दोंका वास्तविक अर्थ गाँधी, सुभाष या जवाहर ही समझ सकते हैं।

× × × ×

सुभाष बाबूकी जीवन-गाथाकी इस रूप-रेखामें तीन मुख्य बातें हैं :—(१) उनका त्याग, उनकी तपस्या और उनकी वीरता, (२) उनका स्वातंत्र्य-प्रेम (३) उनका अनुशासन। पहिली दो बातोंमें सुभाष बाबूके समर्थक तथा उनके विरोधी दोनों सभी एक-मत हैं। सभी यह स्वीकार करते हैं कि उनका देश-प्रेम गौरीशंकरकी तरह उच्च एवं निर्मल है, उनकी आत्मामें ज्वालामुखी की-सी शक्ति है, उनकी तपस्यामें प्रह्लाद और ध्रुव की सी अटलता तथा कर्म और विचारोंमें भीष्मकी-सी वीरता है।

जिस दिन मैंने इस तरुण तपस्वीको आगरेमें देखा, मैंने समझा कि यह तपस्वी अपने हाथमें आज़ादीकी अखंड दीप-शिखा लिये हुए नहीं है, बल्कि वह तो खुद ही आज़ादीकी अखंड दीप-शिखा है !

जवाहर और सुभाष—दोनोंका देश-प्रेम गौरशंकरकी तरह उच्च और स्फटिककी तरह पवित्र है। ये दोनों युवक भारतकी दो आँखें हैं। पूर्ण स्वाधीनताकी नींव डालनेमें दोनोंका ही समान हाथ है। भारत माताके इन दोनों लालोंमें यह विशेषता है कि वे तूफानकी तरह उठकर सबको अपने साथ बहा ले जाते हैं। दोनों ही भारतीय युवकोंकी आँखोंके तारे, किसानों-मजदूरोंकी आशाएँ तथा पूर्ण क्रान्तिके प्रतीक हैं।

तब नेहरू और बोस में क्या अन्तर है ? वही जो लक्ष्मण और भरतमें था। इसमें सन्देह नहीं कि यदि 'अनुशासन' का तात्पर्य लड़ाई—जंगे आज़ादी—में अनुशासनका हो, तब तो सुभाष जवाहरसे क़िसी भी क़दर कम अनुशासन-पालक नहीं होंगे,

क्योंकि सुभाषको तो लक्ष्मणकी तरह लड़नेमें ही मज़ा आता है। लेकिन शान्तिके समय वह जवाहरलालजीकी तरह संयम, गम्भीरता और अनुशासनसे नहीं बैठ सकते।

ब्रिटिश साम्राज्यवादके वह ज्ञानी दुश्मन हैं और जब तक ब्रिटिश साम्राज्यशाहीसे भारतका पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हो जाता, तब तक वह बेचैन ही रहेंगे। उनका वर्तमान विद्रोह इसी बेचैनीका एक भाग है। गाँधीजी चाहते हैं कि सुभाष बाबूकी जोश-रूपी भाप एकत्रित होकर मौके पर आज़ादीकी गाड़ीको खींचे, लेकिन सुभाष बाबू इसको रोकनेमें असमर्थ दिखाई देते हैं।

—श्रीहरिकृष्ण त्रिवेदी

श्री जयप्रकाशनारायण

बिहारके नौजवानोंके किसी मजमेंमें चले जाइये। आप निस्सन्देह उन्हें यह कहते हुए पाइयेगा—हमारा जयप्रकाश हमें कभी भी गलत रास्ते पर नहीं ले जा सकता।

जयप्रकाश—बिहारके नौजवानोंका रहनुमा—जयप्रकाश एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसकी सरसतामें गांभीर्य है, जिसके संकोचमें गुरुतर निर्णयोंकी दृढ़ता है, जिसके मौनमें चिन्तनका प्रवाह है और जिसकी *भव्य आकृतिमें भारतकी राजनीतिके भावी नेताका* स्पष्ट आभास है।

१९३३ में एक दिन नासिक रोड सेण्ट्रल जेलके फाटकसे एक लम्बा नौजवान अपनी सजा भुगत कर बाहर आया था। कौन जानता था कि भारतीय राजनीतिमें वह दिन भी महत्वपूर्ण हो सकेगा ? जयप्रकाश नारायणकी रिहाईके साथ ही भारतीय राज-नीतिमें एक नई शक्ति आ गयी। जयप्रकाश जेलसे एक नई भावना, एक नया दृष्टिबिन्दु लेकर बाहर आया और उससे उत्पन्न हुआ कांग्रेस-साम्यवादी दल।

आज वह हिन्दुस्तानके सार्वजनिक जीवनमें इने-गिने प्रतिष्ठित व्यक्तियोंमें है। लेकिन कुछ ही लोग यह जानते हैं, वह व्यक्ति, जिसका नाम जयप्रकाशनारायण है, कितना महान है और उससे

कम लोग यह जानते हैं कि ऐसे आकर्षक और महान् व्यक्तिके निर्माणमें कितने अनुभव और साहसपूर्ण कार्य छिपे हुए हैं।

उसनें ज़िन्दगीके संघर्षका स्पष्ट अनुभव किया है। शायद इसीलिये उसके विचार इतने स्पष्ट हैं। जब वह शिक्षाके लिये अमेरिका पहुँचा, तो उसने अपना अध्ययन क्लास-रूममें नहीं, बल्कि एक फार्ममें ही शुरू किया था। जब १६२२ में वह कैलिफोर्नियामें पहुंचा, तो यूनिवर्सिटी खुलनेमें तीन महीनेकी देर थी और उसके पास इतने पैसे नहीं थे कि वह मजेमें रह सकता।

कैलिफोर्नियामें अनेक भारतीय रहते हैं, जिनमें सिक्ख और पठान अधिक हैं। जयप्रकाश एक पठान-दलके साथ जा मिला, जिसका रहनुमा शेरखाँ नामक एक पठान था। खान अब्दुल गफ्फार खाँसे शक्ल-सूरत और लम्बाईमें शेरखाँ दूना लगता था। हिन्दुस्तानके सत्याग्रह-आन्दोलनके प्रति प्रवासी भारतीयोंके दिलमें बड़ी उत्सुकता भर गई थी और इस नये आगन्तुकको सभीने सम्मान की दृष्टिसे देखा और जब उन्हें यह मालूम हुआ कि जयप्रकाशने सत्याग्रहमें काम करनेके लिए कालेजकी शिक्षाको तिलांजलि दे दी और उसने अपनी यूनिवर्सिटीकी छात्र-वृत्ति भी छोड़ दी थी, तब उसके लिए काम खोज निकालनेमें कोई कठिनाई न रह गई।

फलका मौसम खत्म हो रहा था और जयप्रकाशको सुबहसे शाम तक अँगूर, अखरोट, बादाम आदिके बगीचोंमें काम करना पड़ता था। जयप्रकाशका काम हर टोकरेके पास घूम-घूम कर सड़े हुए फलोंको उससे निकालकर अलग कर देना था। शायद यही काम

वह आज भी कर रहा है। कांग्रेसके टोकरेसे सड़े हुए फलोंको चुन-चुन कर निकालना ही उसका काम है। इस तरह वह दिनमें दस घण्टे और हफ्तेमें सात दिन काम करता। रविवारको भी फुर्सत नहीं, लेकिन मज़दूरी जरूर अच्छी मिलती—अन्दाज़न चौदह रुपये रोज़ाना। नौजवान जयप्रकाशको यह मज़दूरी एक काल्पनिक आमदनी थी और एक महीनेमें वह ८० डालर बचा सका। इस धनके साथ वह बर्कले गया।

कैलिफोर्नियाकी एक अवधिके बाद जयप्रकाश पुनः दिवालिया हो गया। इसलिये वह आयोवा विश्वविद्यालयमें चला गया, जहाँ कैलिफोर्नियाकी अपेक्षा फीस एक-चौथाई थी, लेकिन यहाँ भी उसे फार्ममें काम करना पड़ता था।

आयोवासे वह विस्कान्सिन चला गया। यहीं उसके जीवनमें एक दूसरी प्रगति आ घुसी, जिसने उसके जीवनकी धारा ही बदल दी। यहीं जयप्रकाशके अशान्त मनको वह प्रकाश मिला, जिसके लिए वह बेचैन था।

अमेरिका-जैसे देशमें एक ही साथ एक ओर अपार धन और दूसरी ओर दारुण दरिद्रताको देखकर उसका हृदय क्षुब्ध हो उठा था। इस रहस्यका समाधान क्या था ? ऐसा क्यों कि कुछ तो जीवनके सभी ऐश्वर्योंका उपभोग करें और शेष अधिकांश घृणित जीवन व्यतीत करनेको बाध्य हों ? विश्वविद्यालयके एक साम्यवादी अध्यापकजीने इनसे कहा कि पूँजीवादी व्यवस्थामें इसका कोई प्रतीकार नहीं। जयप्रकाश बहुत शीघ्र उसकी ओर आकर्षित हो

गया और दोनोंमें गहरी मित्रता उत्पन्न हो गई । उसने मार्क्सवादी साहित्यका अनुशीलन शुरू कर दिया और कुछ ही दिनोंमें साम्य-वादी बन बैठा ।

उसके जीवनका अब एक नवीन उद्देश्य हुआ । उसने विज्ञानके अध्ययनको तिलांजलि देकर अर्थ-शास्त्रकी पढ़ाई शुरू की । एम० ए० की परीक्षाके लिए की गई उसकी कोशिशकी बड़ी प्रशंसा हुई और वह विश्वविद्यालयमें एक अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्यार्थी माना गया । वहाँसे वह न्यूयार्क चला गया, जहाँ बीमार पड़कर महीनों वह अस्पतालमें पड़ा रहा ।

वह अमेरिकामें आठ वर्षों तक रहा और उसने पाँच भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयोंमें अध्ययन किया । उसने गणित, भौतिक विज्ञान और रसायनके अध्ययनसे प्रारम्भ किया था और सालों उसने प्राणि-विज्ञान, मनो-विज्ञान, अर्थ-शास्त्र और समाज-विज्ञानमें लगाये । कई बार अपनी जीविका और युनिवर्सिटीकी फीसके लिये उसे अपनी पढ़ाई स्थगित कर देनी पड़ी थी । उसने कभी जैम बनानेके कारखानेमें मज़दूरी की, कभी लोहेकी फैक्टरीमें मिस्त्रीका काम किया, कभी किसी होटलमें 'बेरा' का पद सुशोभित किया और कभी किसी दूकानमें सेल्समैनका काम किया । इसलिये सन् १९२१ में हिन्दुस्तान लौटा, तो उसे आरामकी ज़िन्दगीकी ज़रा भी इच्छा नहीं थी, बल्कि जनताकी सेवामें अपनेको समर्पित करनेका विचार निश्चित कर ही वह यहाँ आया था ।

यहाँ आते ही जवाहरलाल नेहरूने तुरत उसे कांग्रेसके लेबर-

रिसर्च-डिपार्टमेण्टका अध्यक्ष बना दिया। कुछ महीने बाद जयप्रकाशनारायण सत्याग्रह-आन्दोलनके दिनोंमें कांग्रेसके स्थानापन्न प्रधान मन्त्री भी बन गया।

नासिक जेलके दिन इतिहासमें अमर रहेंगे। उसके साथ उस जेलमें बहुतसे अन्य प्रतिष्ठित कांग्रेस नेता भी थे। मसानी वहीं था और वहीं था अच्युत पटवर्द्धन। इन लोगोंने कांग्रेस साम्यवादी पार्टीके उद्देश्य और उसकी नियमावली तैयारी की। अन्य जेलोंमें भी कांग्रेसके अन्दर दिन-दिन घुसती जानेवाली बुराइयोंसे असन्तुष्ट नवयुवक किसी गतिशील विधान और नवीन दृष्टि-कोणके लिये चिंतित थे और उन लोगोंने भी साम्यवादी सिद्धान्तों को ही एक सहारा माना था।

रिहाईके बाद जयप्रकाशने पटनेमें अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटीकी बैठकके अवसर पर अखिल भारतीय कांग्रेस-साम्यवादी दलका आयोजन किया। आचार्य नरेन्द्रदेवजी सभापति हुए। एक ओर उधर कांग्रेस-कमिटीमें सत्याग्रहको स्थगित कर वैधानिक मार्गके अवलम्बनका प्रस्ताव हो रहा था, दूसरी ओर इधर कांग्रेसके अन्दर उग्र-विचारवालोंका संगठन हो रहा था। जयप्रकाश संगठन-समितिके मंत्री चुने गये। आगे चलकर उसने प्रांत-प्रांतमें घूमकर उग्र-विचारवादियोंका संगठन किया और सभी जगह कांग्रेस-साम्य-वादी पार्टी कायम की। बम्बईमें भी पार्टीकी स्थापना हुई। जय-प्रकाश अखिल भारतीय कांग्रेस-साम्यवादी पार्टीके प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे काम करता रहा। कुछ दिनोंके बाद लखनऊमें कांग्रेसकी कार्य-समितिके वह सदस्य भी चुन लिया गया।

कांग्रेस साम्यवादी दलके सभी कार्यकर्ताओंमें जयप्रकाश ही ऐसा है, जिसे सैद्धान्तिकतासे स्नेह है। लेकिन सैद्धान्तिकता ही उसकी सब कुछ नहीं है—उसकी अंगुलियाँ हमेशा जनताकी नब्ज पर रहती हैं। संकुचित साम्प्रदायिकतासे उसे सख्त नफ़रत है। अगर कांग्रेस साम्यवादी पार्टी एक ऐसी महान राजनीतिक आंदोलन है, जिसकी छत्र-छायामें दिन-दिन उग्र विचार वालोंकी वृद्धि होती जा रही है, तो इस आन्दोलनके प्रवर्त्तन और संचालनका श्रेय जयप्रकाशनारायणको है।

जयप्रकाशकी अपनी एक शैली है। सादगी और सीधापन उसके लेखोंकी विशेषताएँ हैं। 'Why socialism' को एक अपूर्व रचना और अपने विषयकी सर्वश्रेष्ठ किताब कहा गया है। वह कोई महान् वक्ता नहीं, लेकिन अपनी सचाई और अपने विषय की स्पष्ट अभिव्यक्तिसे वह श्रोताओं पर एक अपूर्व प्रभाव डाल देता है—बिलकुल जादू-जैसा।

उसके दो अवगुण हैं। उसके पास बहुत खराब 'शेविंग-सेट' है। एक मुस्कराहटके साथ वह कहेगा कि शहरमें इससे अच्छा सेट नहीं मिलता। जयप्रकाश जैसे खूबसूरत चेहरेवालेके लिये ऐसा 'शेविंग-सेट' रखना माफ़ किया जा सकता है। दूसरी बात, उसे समयकी पाबन्दीका अक्सर ध्यान नहीं रहता। बात असल यह है कि अगर कोई तेज़ विरोधी मिल जाय, तो उसके साथ बहस करनेमें जयप्रकाश आधे दर्जन निश्चित कामोंको भूल जा सकता है, लेकिन ऐसे अवसरोंपर जब अपने

चेहरे पर सच्चे विषादकी रेखाएँ लिये हुए वह आ उपस्थित होता है, तो अपनी भूलके बावजूद वहाँ और प्रिय लगता है।

जयप्रकाश अभी नौजवान है—कुल छत्तीस-सैंतीस वर्षका है। लेकिन उसके अनुभव और ज्ञानका भण्डार इतना विस्तृत और विशाल है कि इस देशमें बहुत कम लोगोंका वैसा होगा। उसकी नम्रतामें कठोर दृढ़ता है और उसने दिखला दिया है कि उसमें महान निर्णयों के सम्पादनकी शक्ति है।

सादगीकी प्रतिमूर्ति, विरोधियोंके प्रति भी उदार, सच्चाईकी प्रतिभा, जयप्रकाशनारायण आजके उपादानों पर स्वर्णिम भविष्यके भवन-निर्माणकी तैयारीमें लगा हुआ है। सारन जिलेके सिताब दियाराके इस सीधे-सादे किसान लड़केने १६ वर्षकी उम्रमें पहले पहल ट्रामकार देखी थी। आज वह एक ऐसे आन्दोलनकी प्रेरक-शक्ति है, जिसके साथ भारतका भविष्य निस्सन्देह उलझा हुआ है।

—श्री युसुफ मेहरअली।